श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

वैष्णवसंहितान्तर्गत

श्रीसनत्कुमारसंहिता

हिन्दी अनुवाद सहित

गौडीयसम्प्रदायाचार्य
श्रीहरिदास शास्त्रीणा सम्पादितः

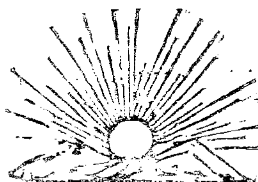
आधुनिक प्रतिलिपि संस्करण

पण्डित श्रीरघुनाथ दास शास्त्रीजी महाराज
व्याकरण,वेदान्तदर्शन,(श्रीधामवृन्दावन)

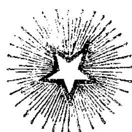
www.bhaktidarshan.org

Whatsapp +918218476676

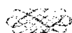
श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्



सनत्-कुमार-संहिता



श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन
न्याय-वैशेषिकशास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण,
सांख्य, मीमांसावेदान्ततर्कतर्कतर्क, वैष्णवदर्शनतीर्थ,
विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादिता ।



सद्ग्रन्थप्रकाशक
श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरिप्रेस
श्रीहरिदास निवास, कालीदह,
पो०—वृन्दावन, जिला—मथुरा,
(उत्तर प्रदेश) पिन—२८११२१

❀ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❀

विज्ञप्ति:

जगज्जन जीवातु व्रजसीमन्तिनीगण की कल्पिता रम्या-उपासना सर्वाभीष्टद है। उस रम्या-उपासना की सरणि निर्माण में श्रीचैतन्य-देवके परिकरों का अनवद्य अवदान अपरिमेय है, स्वारसिकी लीला धारा का संस्थापन "भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि" नामक प्रेम-दर्शन ग्रन्थमें होनेपर भी उसका सुविमल सुखद-रूप 'श्रीगोविन्द लीलामृत प्रभृति ग्रन्थ में दृष्ट होता है।

मनोमूल ही संसार है, इस से मानव क्षुद्राति क्षुद्र होकर चला जाता है। कारण—अभिमानी भक्तिहीन जगमाझे सेइ दीन वृथा तार अशेष भावना॥ अतएव सर्वोत्तम वस्तु में मनोनिवेश के लिए यावतीय उपायों में रम्या-उपासना ही सुगम सुखद है, संसार निदाघ संतप्त मन एकबार मात्र व्रजीय स्वारसिकी लीलामृत में अवगाहन करने पर वह कभी तापक्लिष्ट एवं दीन नहीं होगा।

रम्या-उपासना व्रजवधूगण की कल्पिता होने पर भी वह शास्त्र सम्मत है। गौतमीय तन्त्रमें इसका मूल स्रोत तो है ही, प्रस्तुत ग्रन्थ 'सनत्कुमारसंहिता' में भी उसका सुविमल रूप अङ्कित हुआ है, इस ग्रन्थ के अनुसार ही 'श्रीगोविन्दलीलामृत' ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है, और निशान्त से निशीथ पर्यन्त यावतीय लीलाओं का क्रम निर्वाह भी अक्षुण्ण रूप से इस के अनुसार देखने में आता है।

यह "सनत्कुमारसंहिता" ३६ तम पटल मात्र ही मुद्रित हुआ है, मेरे पास इस की दो पाण्डुलिपि हैं, इसका ५५ तम पटल भी है, जिसमें श्रीरुक्मिणी जी के प्रश्न से श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीवृन्दावन लीला का वर्णन किया है।

श्रीनारद जी के प्रश्न से प्रवक्ता श्रीसदाशिव जी का उत्तर प्रदान प्रसङ्ग से प्रस्तुत ग्रन्थ का आरम्भ परिसमाप्ति हुई है। इस में गोपीजन वल्लभ की उपासना के लिए परमावश्यक मन्त्र राज, युगलमन्त्र प्रभृति का वर्णन ध्यानादि क्रम से अङ्कित होने के कारण परवर्त्ती पद्धतिकारों का भी यही उपजीव्य हुआ है।

इसमें परकीया भावकी ही उपासना वर्णित है, यह भागवतोक्त परम रहस्य परमाचिन्त्य परकीया है, जिसका फल वर्णन प्रसङ्ग में मुखरित श्रीमद्भागवत कहते हैं।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदञ्च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनु शृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

व्रज वधूगण के साथ व्रजचन्द्रमा का विलास श्रवण से हृद्रोग रूप कामवासना विदूरित होती है, इस ग्रन्थस्थ अष्टकालीन सेवा फल वर्णन प्रसङ्ग भी उक्त रूप ही है।

श्रीनारद उवाच—धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया देवि न संशयः।
श्रीसनत्कुमार उवाच— हरे र्मे नैत्यिकी लीला यतो मेऽद्य प्रकाशिता॥
संसाराग्नि विनाशाय मयाप्येतत् सचोदितम्।
त्वया चैतद् गोपनीयं रहस्यं परमाद्भुतम्॥
धर्मानेतानुपाश्रित्य जपन्मन्त्रमहर्निशम्।
अचिरादेव तद्दास्य माधाप्स्यसि न संशयः॥

एतान् धर्मान्—अष्ट काल सेवारूपान् 'मन्त्रं' युगल मन्त्रम्।
तद् दास्यम् श्रीराधाकृष्णयो र्दास्यं, दासीभावम्॥
जपेद् यः कामगायत्रीं कामबीज समन्विताम्।
तस्य सिद्धिर्भवेत् प्रेम राधाकृष्णस्थलं व्रजेत्॥
एतां पञ्चपदीं जप्त्वा श्रद्धयाऽश्रद्धयाऽसकृत्।
वृन्दावने तयोर्दास्यं गच्छत्येव न संशयः॥

इस प्रकार उपासना, वास्य प्राप्ति, मन्त्र, मन्त्रजप प्रकार ध्यानादि प्रकार का मूलग्रन्थ 'सनत्कुमारसंहिता' अति प्रामाणिक है।

श्रीगोपालगुरु गोस्वामी कृत पद्धति ग्रन्थ में सनत्कुमार संहिता के मन्त्रोद्धार प्रकरण में द्वात्रिंशद् अक्षर 'हरे कृष्ण' महामन्त्र का वर्णन है, किन्तु प्रस्तुत पाण्डुलिपि में उसका उल्लेख नहीं है, प्राचीन पद्धति स्मृति ग्रन्थ में उद्धृत अंश विशेष भी इस में उपलब्ध नहीं है। अनेक तन्त्र संहिता, यामल, ग्रन्थों का उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है, किन्तु उसका दर्शन सुदुर्लभ है।

हरिदास शास्त्री



** श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् **

सनत्कुमारसंहिता

** श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः **

एकदा यमुनातीरे समासीनं जगद् गुरुं ।
नारदः प्रणिपत्याह देवदेवं सदाशिवम् ॥१॥
श्री नारद उवाच । देवदेव महादेव सर्वज्ञ जगदीश्वर ।
भगवद् धर्मतत्त्वज्ञ कृष्ण मन्त्र विदाम्बर ! ॥२॥
कृष्णमन्त्रा मया लब्धाः सरस्तोये च पितुः परे ।
ते सर्वे साधिता यत्नान्मन्त्र राजादयोमया ॥३॥
बहुवर्ष सहस्रेषु शाकमूलफलाशिना ।
शुष्क पर्णाम्बुवाय्वादि भोजिना च निराशिना ॥४॥
स्त्रीणां सन्दर्शनालाप वर्जिना भूमिशायिना ।
कामादि षड् गुणान् जित्वा वाह्येन्द्रियान्नियम्य च ॥५॥
अनन्य मनसा नित्य कृष्णध्यान परेण च ।
त्रिकाल स्नान निरतः शौच चारपरायणः ॥६॥

गदाधर प्राणपत्य गौरचन्द्रसमन्वितम् ।
सरलभाषया वच्मि सनत् कुमारसंहितां ॥

यमुना तीर में उपविष्ट जगद् गुरु देव देव सदाशिव को प्रणाम कर एकदिन नारदजी बोले ॥१॥ देव देव, महादेव, सर्वज्ञ जगदीश्वर भगवद् धर्म तत्त्वज्ञ आप कृष्ण मन्त्र वेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं ॥२॥ मैंने पिता के समीप से कृष्णमन्त्र को प्राप्त कर यत्न से मन्त्र राजादिका साधन भी किया ॥३॥ शाक मूल फल भोजन कर, शुष्कपत्र, जल, वायु, भोजन तथा अनाहार से हजारों वर्ष बिताया ॥४॥ स्त्रीयों का दर्शन, आलाप, वर्जन, भूमि में शयन, कामादि षड् गुणों का संयम, एवं वाह्येन्द्रियों का सयम किया ॥५॥ अनन्य मन से श्रीकृष्ण का

त्रिकालमर्चयेद् देवं साङ्ग न्यास विधानतः ।
नामानि कीर्त्तयंस्तस्यतत् कथा श्रवणोत्सुकः ॥७॥
तद् गुणान् भावयन्नित्यं जपन्मन्त्रमहर्निशम् ।
मन्त्रस्यार्थं भावयंश्च प्रेमाश्रुपुलकाञ्चितः ॥८॥
एवमादि गुणैर्युक्तोबहुवर्षशतं ततः ।
संसाध्य वैष्णवान्मन्त्रान् निर्वेदं गतवानहम् ॥९॥
न पुनश्चरणैः कश्चिद्विनाष्टदशाभि र्मनुः ।
केनापि साधितः क्वापि मया दृष्टो न भूतले ॥१०॥
जीव हीनो यथा देहः सर्व कर्मसु न क्षमः ।
पुनश्चरण हीनोहि तथा मन्त्र प्रकीर्त्तितः ॥११॥
विनान्यासं तथा मन्त्रो जपकल्पशतैरपि ।
न भवेत् फलदः पूर्वमित्युक्तं मे स्वयम्भुवा ॥१२॥
कलौ किल भविष्यन्ति नराः पाप परायणा ।
स्वल्पायुश्च मन्दभाग्या मन्दप्रज्ञाः कुमेधसः ॥१३॥
स्वधर्म रहिता नित्यं हरिभक्ति विवर्जिताः ।

ध्यान कर त्रिकाल स्नान तथा शौचाचार परायण भी हुआ ॥६॥ साङ्ग न्यास विधान से त्रिकाल देवता का अर्चन, नाम कीर्त्तन कथा श्रवण भी किया ॥७। उनके गुणों का चिन्तन निरन्तर किया, दिन रात मन्त्र जप भी किया, प्रेमाश्रु पुलकाञ्चित होकर मन्त्र का अर्थ चिन्तन भी किया ॥८॥ इस प्रकार नियमों से अनेक काल व्यतीत कर वैष्णव मन्त्रों का साधन कर निर्विण्ण हो गया ॥९॥ विना पुरश्चरण से अष्टादशाक्षर मन्त्र का साधन सिद्ध कोई हुआहै, यह तो मैंने कभी देखा नहीं है ॥१०॥ शरीर जिस प्रकार प्राण हीन होने से होता है, उस प्रकार पुरश्चरण हीन मन्त्र भी होता है ॥११॥ न्यास के विना शत कल्प तक मन्त्रजप करने पर भी मन्त्र फलद नहीं होता है, स्वयम्भुने कहा है ॥१२॥ कलि काल में मनुष्यगण पाप परायण, स्वल्पायुः, मन्द भाग्य मन्द प्रज्ञ, मेधाहीन होते हैं ॥१३॥ नित्य स्वधर्म रहित, हरिभक्ति शून्य, अशुद्ध हृदय, क्षुद्र कामादि के

स्वधर्म रहिता नित्यं हरिभक्ति विवर्ज्जिताः ।
अशुद्ध हृदयाः क्षुद्राः कामादि वशवर्तिनः ॥१४॥
पुत्रदार रतानित्यं हरिभक्ति विवर्ज्जिताः ।
ईदृशश्च कथंसाध्याः कृष्ण मन्त्राः सुदुर्ल्लभः ॥१५॥
न चैषाञ्च हरौ भक्तिः श्रवणाद्या भविष्यति ।
कामाद्याकुल चित्तानां पुत्रदार रतात्मनाम् ॥१६॥
यच्चापि भगवन्नाम सुलभंस्यात् कलौयुगे ।
न पुर्णफलदं तच्चतस्मिन्नेवापराधिनाम् ॥१७॥
अपराध सहस्राणि कृत्वा कृष्णे निरन्तरं ।
नामाश्रयास्तरन्त्येव तानि सर्वाणि मानवाः ॥१८॥
नाम्नि कृत्वापराधांस्तु यास्यन्ति नरकंध्रुवम् ।
इत्थं सुदुष्कराभक्तिः सुकरापि जनार्दने ॥१६॥
न च भक्ति विना किञ्चिदुपायं विद्यते परं ।
येनैवानुष्ठितेनाशु गमिष्यन्ति हरेः पदम् ॥२०॥
द्रव्य देशात्मनां नित्यमशुद्धत्वात् कलौयुगे ।
न कर्म फलदं किञ्चिदित्याहुश्च मनीषिणः ॥२१॥
ज्ञानञ्च दुष्करं पुंसां कलिकाले विशेषतः ।

वश होते हैं ॥१४॥ पुत्र पत्नी में आसक्त, हरिभक्ति शून्य ही है, तब इन सबों से सुदुर्लभ कृष्ण मन्त्र का साधन कैसे होगा ॥१५॥ पुत्र पत्नी में रत होने के कारण कामादियुक्त चित्त होते हैं, तब श्रवणादि से भी हरिभक्ति कैसे होगी ॥१६॥ कलियुग में हरिनाम सुलभ है, तो भी उन अपराधियों के लिये वह फलद नहीं है ॥१७॥ निरन्तर कृष्णके समीप में अपराध करने परभी मानव नामाश्रित होनेपर तर जाते हैं ॥१८॥ किन्तु हरिनाम के निकट अपराध होनेपर निश्चित नरक होता ही है, इस प्रकार से सुदुष्करा भक्ति कैसे मिल सकती है, जो कि सब से सुलभ है ॥१६॥ श्रीहरि चरण के सान्निध्य के लिए भक्ति को छोड़कर दूसरा कोइ उपाय नहीं है ॥२०॥ द्रव्य, देश, बुद्धि कलियुग में सब अशुद्ध हैं, कर्म फल प्रदान में समर्थ नहीं है ॥२१॥

बहु जन्म शतैः कस्यचित् जायते क्वचित् ॥२२॥
न च ताभ्यामपि ज्ञान कर्मभ्यां प्राप्यते हरिः ।
तस्मादेतत् द्वयं व्यर्थं स्यादित्येवं मतं मम ॥२३॥
न ज्ञानेन कर्मणा वा वैराग्येण तपस्यया ।
श्रेयोभिरितरैश्चापि दानाद्यैर्लभ्यते हरिः ॥२४॥
लभ्यते केवलं भक्त्या सा चापि दुर्लभाकलौ ।
इत्थं चिन्ताकुलादेव त्वामहं शरणं गतः ॥२५॥
तदुपायं किञ्चिदद्य कलि कालोचितं वद ।
येनाञ्जसा गमिष्यन्ति हरि लोकं नराः प्रभो ॥२६॥
भगवन् केन मन्त्रेण संसारोत्तरणं नृणां ।
तन्मयाचक्ष्वत तेन सर्वलोक हितं यतः ॥२७॥
को मन्त्र सर्व मन्त्राणां पुनश्चरण वर्जितः ।
विना न्यासै विनायोगैः संस्काराद्यै विनाप्रभो ॥२८॥
सकृदुच्चारणान्नाम्नां ददाति फलमुत्तमम् ।
यदि योग्योऽस्मि देवेश तन्मे करुणया वद ॥२९॥

कलिकाल में उन सब के लिए ज्ञान भी दुष्कर हैं । अनेक वर्षों में कदाचित् किसी का ज्ञान होता है ॥२२॥ उन ज्ञान कर्म से भी हरि चरण की प्राप्ति नहीं होती है, अतः दोनों ही व्यर्थ है, यह मेरा मत् है ॥२३॥ ज्ञान, कर्म, वैराग्य, तपस्या, दान एवं अन्यान्य शुभ कर्म द्वारा भी श्रीहरि के सन्निध्य लाभ नहीं होता है ॥२४॥ केवल भक्ति से ही लाभ होता है, किन्तु कलियुग में भक्ति अति दुर्ल्लभ है । इस प्रकार सोचकर ही मैं आप की शरण में आया हूँ ॥२५॥ आज आप कलिकालों कि कुछ उपाय को कहें, जिस के द्वारा लोक श्रीहरि धाम को जा सके ॥२६॥ हे भगवन् किस मन्त्रसे ससार का पार होता है, उसको आप कहें, उससे लोकों का हित होगा ॥२७॥ हे प्रभो ! कौन ऐसा मन्त्र है, जिसमें योग,संस्कार, न्यास, पुरश्चरण की आवश्यकता नहीं है ॥२८॥ एक वार उच्चारण करने से ही उत्तम फल मिलता है, मैं यदि सुनने में योग्य हूँ तो आप करुणा करके कहें ॥२९॥

श्री सदाशिव उवाच,—

साधुपृष्टं महाभाग ! सर्वलोक हितैषिणा ।
सुगोप्यमपि वक्ष्यामि मन्त्रचिन्तामणिं तव ॥३०॥
रहस्यानां रहस्यं यद् गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ।
न मया कथितं देव्यै नाग्रजेभ्यः पुरा तव ॥३१॥
वक्ष्यामि युगलं तुभ्यं कृष्णमन्त्रमनुत्तमम् ।
मन्त्र चूड़ामणि नाम युगलं स्वयमेव च ॥३२॥
पर्य्याया श्चास्य मन्त्रस्य तथा पञ्चपदीतिच ।
गोपीजनेति वल्लभेति चरणाविति च क्रमात् ॥३३॥
शरणञ्च प्रपद्येति सते एतत् पद त्रयम् ।
पद त्रयात्मको मन्त्र षोड़श.र्णउदाहृतः ॥३४॥
नमो गोपीजनेत्युक्त्वा वल्लभाभ्यां वदेस्ततः ।
पद द्वयात्मको मन्त्रो दशार्णः खलु कथ्यते ॥३५॥
एतां पञ्चपदीं जप्त्वा श्रद्धया श्रद्धयासकृत् ।
कृष्णप्रियावृन्दमध्ये वसत्येव न संशयः ॥३६॥
न पुरश्चरणापेक्षा नास्य न्यासविधिक्रमः ।

श्री सदाशिव बोले,आप सकल लोकोंके हिताभिलाषी हैं,हे महाभाग ! सु-गोप्य होने पर भी मन्त्र चिन्तामणि की बात् कहूंगा ॥३०॥ यह रहस्यों का रहस्य है और गोपनीय का भी गोपनीय है, मैं इस के पहले देवी को और अग्रजों को भी नहीं कहा है ॥३१॥ मैं आप को मन्त्र चूड़ामणि नाम सर्वश्रेष्ठ युगल कृष्ण मन्त्र को कहूँगा ॥३२॥ मन्त्र का दूसरा नाम पञ्चपदीति है, गोपीजन वल्लभचरण शरणं प्रपद्ये "इस प्रकार पद त्रयात्मक मन्त्र षोड़शाक्षर होता है ॥३३-३४॥ नमो गोपीजन वल्लभाभ्यां कहने पर दशाक्षर मन्त्र होगा ॥३५॥ इस पञ्चपदी मन्त्र का श्रद्धा से हो अथवा अश्रद्धा से हो, जप करने पर सन्देह के बिना ही वह कृष्ण के निकट पहूँच जावेगा ॥३६॥ इस में पुरश्चरण न्यास विधि, देशकाल नियम और मित्रादि शोधन की अपेक्षा नहीं हैं ॥३७॥ इस मन्त्रके अधिकारी सब मनुष्य हैं,चाण्डाल,

न देश काल नियमो नारि मित्रादि शोधनम् ॥३७॥
सर्वेऽधिकारिणश्चात्र चाण्डालान्तामुनीश्वराः ।
स्त्रियः शूद्रादयश्चापि जड़ मूकान्ध पुङ्गवाः ॥३८॥
अन्ध्रा हूनाः किराताश्च पुलिन्दापुक्कशास्तथा ।
आभीरा यवनाः कङ्काः खशाद्याः पापयोनयः ॥३९॥
दम्भाहङ्कार परमाः पापपैशून्य तत् पराः ।
गो ब्राह्मणानां हन्तारो महोपपातकान्विताः ॥४०॥
ज्ञान वैराग्य रहिताः श्रवणादि विवर्जिताः ।
एते चान्ये च सर्वे स्युरस्याधिकारिणो मुने ॥४१॥
यदि भक्तिर्भवेदेषां कृष्णेसर्वेश्वरेश्वरे ।
तदाधिकारिणः सर्वे नान्यथा मुनिसत्तमाः ॥४२॥
याज्ञिको दान निरतः सर्व तीर्थोपसेवकः ।
सत्यवादी यति र्वापि वेद वेदाङ्ग पारगः ॥४३॥
ब्रह्म निष्ठः कुलीनो वा तपस्वी व्रततत्परः ।
स चाधिकारी न भवेत् कृष्णे भक्तिविवर्जितः ॥४४॥
तस्माद्धरेरभक्ताय कृतघ्नाय न मानिने ।
न च श्रद्धा विहीनाय वक्तव्यं नास्तिकाय च ॥४५॥

स्त्री, शूद्र, जड़ मूक, अन्ध, पङ्गु, अन्ध्र, हूण, किरात, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, यवन, कङ्क खश प्रभृति सब व्यक्ति इस मन्त्र के अधिकारी हैं ॥३८-३९॥ दम्भ, अहङ्कार पाप, खलता युक्त, गो ब्राह्मण हत्याकारी, महापातकी, ज्ञान वैराग्य शून्य शास्त्र श्रवण हीन, आदि सभी व्यक्ति का अधिकार इस मन्त्र में है ॥४०-४१॥ यदि सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण में भक्ति हो तो वह अधिकारी होगा, भक्ति हीन जन इस मन्त्र का अधिकारी नहीं होगा ॥४२॥ कृष्णभक्ति वर्जित होनेसे याज्ञिक, दान शील तीर्थ सेवा, सत्यवादी सन्यासी, वेद-वेदाङ्ग पारग, व्यक्ति, ब्रह्मनिष्ठ, कुलीन, तपस्वी, व्रताचरण परायण व्यक्ति का इस मन्त्रमें अधिकार नहीं होगा ॥४३-४४॥ इसलिये जो हरिभक्त नहीं है, कृतघ्न, मानी अश्रद्धालु, नास्तिक, सेवा रहित एवं जिसने

आशुश्रुवं प्रतिब्रूयान्नासंवत्सरवासिनम् ॥
श्री कृष्णेऽनन्य भक्ताय दम्भलोभ विवर्जिते ॥४६॥
काम क्रोधादि मुक्ताय देयमेतत् प्रयत्नतः ।
सदा शिव ऋषि श्चास्य गायत्रीच्छन्द उच्यते ॥४७॥
देवता वल्लवीकान्तो मन्त्रस्य प्रकीर्त्तितः ।
स प्रियस्य हरेर्दास्ये विनियोग उदाहृतः ॥४८॥
आचक्राद्यैः पञ्चाऽङ्गानि तैरेव करयोरपि ।
अथ वैतद्द्वयं विप्र बीजेनैव समाचरेत् ॥४९॥
मन्त्रस्य प्रथमवर्णो विन्दुना परिशोऽञ्चितनः ।
गमित्येव भवेद्बीजं नमः शक्तिरिहोदिता ॥५०॥
अन्तिमानि दशाङ्गानि तेनैव च तथार्चनम् ।
गन्ध पुष्पादिभिस्तत्र जनैः कार्यमनामतः ॥५१॥
न्यास पूजे च नित्ये च कर्त्तव्ये हरि तुष्टये ।
अत एवास्य मन्त्रस्य न्यासो नान्येच कंचन ॥५२॥
सकृदुच्चारणादस्य कृतकृत्यो न संशयः ।
तथापि दशधा नित्यं जपाद्यर्थं विभावयन् ॥५३॥

एक वर्षकाल तक गुरु के पास रहकर सेवा नहीं की है, उस को इस मन्त्र का उपदेश न करें ॥४५॥ जो जन श्रीकृष्ण का अनन्य भक्त है, दम्भ, लोभ, काम, क्रोध से मुक्त है, उस को इस मन्त्र का उपदेश करें ॥४६॥ काम क्रोधादि शून्य को मन्त्र दान करें, सदाशिव ऋषि, गायत्री छन्द, वल्लवीकान्त मन्त्र देवता है। श्रीहरि के दास्य की कामना में ही इस मन्त्र का विनियोग होता है ॥४७-४८॥ अङ्गन्यास कर न्यास भी इस मन्त्र से ही करें ।४९॥ मन्त्र का प्रथम वर्ण को विन्दु युक्त करें, गं यह वीज मन्त्र होगा, नमः इसमें शक्ति होगी ॥५० अन्तिम दशाङ्गका निर्वाह भी इस मन्त्रसे करें और गन्ध-पुष्पादि द्वारा पूजनभी करें ॥५१ श्रीहरिके सन्तोषके लिए न्यास पूजनभी नित्य करना आवश्यक हैं ॥५२॥ एकवार उच्चारण से ही साधक पूर्ण होता है। तथापि दश वार जप करना आवश्यक है ॥५३॥ हे द्विजोत्तम !

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रस्यास्य द्विजोत्तम ।
पीताम्बरं घनश्यामं द्विभुजं वनमालिनम् ॥५४॥
बर्हि वर्हाकृतापीड़ं शशिकोटिनिभाननम् ।
घूर्णायमान नयनं कर्णिकारावतंसिनम् ॥५५॥
अभित श्चन्दनेनाथ मध्ये कुमकुमबिन्दुना ।
रचितं तिलकं भाले विभ्रतं मण्डलाकृतिम् ॥५६॥
तरुणादित्य सङ्काशं कुण्डलाभ्यां विराजितम् ।
घर्माम्बुकणिका राजद् दर्पणाभ कपोलकम् ॥५७॥
प्रियामुखन्यस्तापाङ्गं लीलया चोन्नतभ्रुवम् ।
अग्रभागन्यस्त मुक्ता स्फुरदुच्च सुनासिकम् ॥५८॥
दशनज्योत्स्नया राजत् पक्वविम्बफलाधरम् ।
केयूराङ्गद सद्रत्न मुद्रिकाभिर्लसत् करम् ॥५९॥
विभ्रतं मुरलीवामे पानौ पद्मतथेतरे ।
काञ्चिदाम स्फुरन्मध्यं नूपुराभ्यां लसत् पदम् ॥६०॥
रति केलि रसावेश चापलं चपलेक्षणम् ।
हसन्तं प्रियाया सार्द्धं हासयन्तञ्च तां मुहुः ॥६१॥

अनन्तर मैं ध्यान को कहता हूँ । श्रवण करो ! पीताम्बर, घनश्याम, द्विभुज वनमाली, मयूर पुच्छ से शिरोभूषण निर्मित है, कोटि चन्द्रकी भाँति मुख है, नयन चञ्चल है, कर्णिकार कुसुम काणमें शोभित हैं, कपाल में चन्दन का तिलक है, मध्य में कुङ्कुम विन्दु है, तरुण आदित्य के समान कुण्डल द्वय है, घर्म विन्दु से आपका गण्डस्थल शोभित है, कपोल दर्पण के समान है, अपाङ्ग दृष्टि प्रिया के मुख मण्डल दर्शन के लिए नियुक्त है, भ्रू उन्नत है, और लीलायुक्त है । उन्नत नासिका के अग्रभाग में मुक्ता शोभित है ॥५४-५५-५६-५७-५८॥ दशन ज्योत्स्ना से पक्व बिम्बफल के समान अधर शोभित है, केयूर, अङ्गद, सद्रत्न अङ्गुरीयक द्वारा हस्त शोभित है ॥५९॥ वाम हस्त में मुरली एवं दक्षिण हस्त में पद्म धारण किए हुए हैं । कटिदेश काञ्चिदाम से शोभित है और चरण कमलों में नूपुर विराजित है ॥६०

इत्थं कल्प तरोर्मूले रत्नसिंहासनोपरि ।
वृन्दारण्ये स्मरेत् कृष्णं संस्थितं प्रियया सह ॥६२॥
वाम पार्श्वे स्थितां तस्य राधिकाञ्च स्मरेत्ततः ।
निचोन नील वसनां द्रुतहेम सम प्रभाम् ॥६३॥
पटाञ्चलेनावृतार्द्ध सुस्मेरानन पङ्कजाम् ।
कान्तवक्त्रे न्यस्त नृत्यच्चकोरी चञ्चलेक्षणाम् ॥६४॥
अङ्गुष्ठ तर्जनीभ्याञ्च निज प्रिय मुखाम्बुजे ।
अर्पयन्तीं पूगफालीं पर्ण चूर्णसमन्विताम् ॥६५॥
मुक्ताहार स्फुरच्चारु पीनोन्नत पयोधराम् ।
क्षीण मध्यां पृथुश्रोणीं किङ्किनी जालशोभिताम् ॥६६॥
रत्न ताटङ्क केयूर मुद्रा वलयधारिणीम् ।
रणत् कटक मञ्जीर रत्न पादाङ्गुरीयकाम् ॥६७॥
लावण्यसारमुग्धाङ्गीं सर्वावयवसुन्दरीम् ।
आनन्द रस संमग्ना प्रसन्नां नवयौवनाम् ॥६८॥

रति केलि रसावेश से चपल नयन अतिशय चञ्चल है, प्रिया के साथ इस प्रकार हँसते रहते हैं, और प्रिया को हँसाते रहते हैं ॥६१॥ इस प्रकार कल्पतरु के नीचे रत्नसिंहासन में प्रिया के साथ विराजमान श्रीगोविन्द देव का स्मरण करें ॥६२॥ अनन्तर उन के वाम पार्श्व में स्थित श्रीराधिका का स्मरण करो। सूक्ष्म नील बसन, अङ्ग कान्ति गलित सुवर्ण के समान है ॥६३॥ पटाञ्चल के द्वारा मुखार विन्द अर्ध आवृत है। कान्त कृष्ण के वदनारविन्द में दर्शन लोलुप नेत्र चकोरी चञ्चलायमान है ॥६४॥ अङ्गुष्ठ तर्जनी के द्वारा प्रिय के मुखाम्बुज में ताम्बूल अर्पण कर रही है ॥६५॥ मध्य देश क्षीण है, श्रोणी विशाल है, किङ्किणी से शोभित है। वक्षादेश मुक्ताहार से शोभित है, और पीन उन्नत पयोधर विराजित है ॥६६ रत्न ताटङ्क, केयूर, वलय आभूषण धारण किये हैं, पद पङ्कज में शब्दायमान कटक मञ्जीर, रत्न पादाङ्गुरीयक है ॥६७॥ लावण्यसार से श्रीअङ्ग शोभित है, सकल अवयव सौन्दर्य से भरे हुए हैं,

सख्यश्च तस्य विप्रेन्द्र तत् समान वयोगुणा: ।
तत् सेवन परा भाव्या श्चामरव्यजनादिभि: ।।६९।।
अथ तुभ्यं प्रवक्ष्यामि मन्त्रार्थं शृणु नारद ।
बहिरङ्गै प्रपञ्चस्य स्वांशै मायादिशक्तिभि: ।।७०।।
अन्तरङ्गै स्तथा नित्यविभूतैस्तैश्चिदादिभि: ।
गोपनादुच्यते गोपी राधिका कृष्ण वल्लभा ।।७१।।
देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।
सर्वलक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लाद स्वरूपिणी ।।७२।।
तत: सा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनीति मनीषिभि: ।
तत् कला कोटि कोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिका: ।।७३
सातु साक्षात् महालक्ष्मी कृष्णोनारायण: प्रभु: ।
न तयोर्विद्यते भेद: स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम ।।७४।।
बहुना किं मुनिश्रेष्ठ विना ताभ्यां न किञ्चन ।
चिदचिल्लक्षण सर्वं राधा कृष्णमयं जगत् ।।७५।।

आनन्द रस में निमग्न हैं, प्रसन्न हैं, और नवयौवन मण्डित हैं ।।६८।। हे विप्रेन्द्र ! उन की सखीगण उन के समान ही वय: गुण के होते हैं, उन सब की अभिलाष उनकी सेवामें हैं, और चामर व्यजनादि सेवा में वे सब नियुक्त हैं ।।६९।। अनन्तर नारद, मैं तुम्हें मन्त्रार्थ कहूँगा, उसे सुनो ! अंश रूपा मायादि शक्ति द्वारा प्रपञ्च जगत् की सृष्टि करती है, अन्तरङ्ग, नित्य विभूति चिद्विभूति आदि से निरन्तर गोपन (रक्षा) करने के कारण ही गोपी कही जाती है, वह राधिका है कृष्ण वल्लभा है ।।७०-७१।। देवी, कृष्णमयी राधिका को परदेवता कहीं जाती है, वह सर्वलक्ष्मीमयी सर्वलक्ष्मी स्वरूपा, कृष्णाह्लाद स्वरूपिणी है ।।७२।। वह साक्षात् महालक्ष्मी है, और श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण प्रभु हैं, उन दोनों में मुनि सत्तम स्वल्प भी भेद नहीं है। अत: राधिका को मनीषिगण ह्लादिनी शक्ति कहते हैं, और कला अंश कोटि से त्रिगुणात्मिका दुर्गादि शक्ति हैं ।।७३-७४।। और अधिक क्या कहें, हे मुनि सत्तम ! उन दोनों के बिना कुछ भी

इयं दुर्गा हरोरुद्रः कृष्णः शक्रइयं शची ।
सावित्रीयं हरि ब्रह्मा धूमोर्ण्यासौ यमोहरिः ॥७६॥
इत्थं सर्वं तयोरेव विभूतिं विद्धि नारद ।
न शक्यते मया वक्तुं तत्तु वर्षशतैरपि ॥७७॥
त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या जम्बुद्वीपो यतः परम् ।
तत्रापि भारतं वर्षं तत्रापि मथुरा पुरी ॥७८॥
तत्र वृन्दावनं नाम तत्र गोपी कदम्बकः ।
तत्र राधा सखीवर्ग स्तत्रापि राधिका परा ॥७९॥
सान्निध्याधिक्यत स्तस्या आधिक्यं स्याद्यथोत्तरम् ।
पृथिवी प्रभृतीनान्तु नान्यत् किञ्चिदिहोदितम् ॥८०॥
सैषाहि राधिका गोपीजन स्तस्याः सखीजनः ।
तस्य सखी समूहस्य वल्लभौ प्राणनायकौ ॥८१॥
राधाकृष्ण तयोः पादान् शरण स्यादिहाश्रयम् ।
प्रपद्ये गतवानस्मि जीवोऽहं मतिदुःखितः ॥८२॥

नहीं है, चिद् और अचित् स्वरूप में जो भी कुछ है सब राधा और कृष्ण हैं, राधाकृष्णमय जगत है ॥७५॥ यह दुर्गा, हरि, रुद्र, कृष्ण, शक्र, शची, सावित्री, हरि, ब्रह्मा, यम हरि आदि हैं ॥७६॥ इस प्रकार ही उन दोनों की विभूति है, हे नारद ! मैं शतवर्ष में भी उन विभूति का कह नहीं सकता हूँ ॥७७॥ त्रैलोक्य में पृथिवी धन्या है, उस में जम्बुद्वीप श्रेष्ठ है, उस में भारतवर्ष श्रेष्ठ है, और भारतवर्ष में मथुरा पुरी श्रेष्ठ है ॥७८॥ उस में वृन्दावन श्रेष्ठ है, उस में गोपी समूह श्रेष्ठ हैं, उस में राधा सखीवर्ग श्रेष्ठ हैं, उस में श्री राधिका सर्व श्रेष्ठा हैं ॥७९॥ राधिका के सान्निध्य के तारतम्य से ही सब के आधिक्य के तारतम्य होते रहते हैं, पृथिवी प्रभृतियों की यही स्थिति है ॥८०॥ वह ही राधिका गोपी है, उन की सखीजन भी गोपी हैं, उन सखी समूह के प्रिय राधा और कृष्ण हैं ॥८१॥ श्रीराधा कृष्ण के चरण ही मेरी शरण हो, इस प्रकार जान उन चरणों में प्रपन्न होता हूँ। इस प्रकार शरणागत व्यक्ति उनका होता है,

सोऽहं य: शरणं प्राप्तो मम तस्य वदन्ति च ।
सर्वं ताभ्यां तदर्थं हि तद् भोग्यं ननु ये मम ॥८३॥
इत्यसौ कथितो विप्रमन्त्रस्यार्थः समासतः ।
युगलार्थस्तथान्यासः प्रपत्तिः शरणागतिः ॥८४॥
आत्मार्पणं मे पञ्च पर्यायास्ते मयोदिताः ।
अयमेव चिन्तनीयो दिवानक्तमतन्द्रितः ॥८५॥
अथ दीक्षा विधिं वक्ष्ये शृणु नारद तत्त्वतः ।
श्रवणादेव मुच्यन्ते विना यस्य विधानतः ॥८६॥
आविरिञ्चात् जगत् सर्वं विज्ञाय नश्वरं बुधः ।
आध्यात्मिकादि त्रिविधं दुःख मेवानुभूय च ॥८७॥
अनित्यत्वाच्च सर्वेषां सुखानां मुनिसत्तम ।
दुःखपक्षेविनिक्षिप्य तानि तेभ्यो विरज्यते ॥८८॥
विरज्य संसृते ह्यमौ साधनानि विचिन्तयेत् ।
अनुत्तम सुखस्यापि संप्राप्तौभृशं दुःखितः ॥८९॥
साराणां दुस्करत्वं हि विज्ञाय च महामतिः ।

और वे दोनों ही उनके हो जाते हैं, भोक्ता वे दोनों राधा और कृष्ण होते हैं । इस प्रकार जो जीव अपना सर्वस्व श्रीराधाकृष्ण को प्रदान कर शरणागत हो जाता है, और उन दोनों का भोग्य हो जाता है, अपना कुछ भी नहीं रहता है । हे विप्र ! मैं संक्षेप से मन्त्रार्थ को कहा, युगलार्थ न्यास, प्रपत्ति, शरणागति, आत्मार्पण, यह पञ्चपर्याय है, इस को मैंने कहा है । इसका चिन्तन ही रातदिन अनलस भाव से करना चाहिये ॥८२, ८३, ८४, ८५॥ नारद ! अन्य दीक्षा विधि को भी कहता हूँ । विना विधान से भी जिसको सुनने से मानव मुक्त हो जाता है ॥८६॥ विरिञ्चि से लेकर सकल जगत् को नश्वर जान कर वुधजन आध्यात्मिकादि दुःखत्रय को अनुभव कर अनित्य सुखों से विरत हो जावे ॥८७-८८॥ भोक्ता होकर जगत् में सुख भोगने की इच्छा को त्यागकर श्रेष्ठ सुख प्राप्ति के लिए साधनों का अनुसन्धान करें ॥८९॥ महामति जन सार को जानना दुष्कर जान कर

भृशमार्त्त स्ततो विप्र श्रीगुरुं शरणं व्रजेत् ॥६०॥
शान्तो विमत्सरः कृष्ण भक्तोऽनन्य प्रयोजनः।
अनन्य साधन श्रीमान् क्रोधलोभ विवर्जितः ॥६१॥
श्रीकृष्ण रस तत्त्वज्ञः कृष्ण मन्त्र विदाम्वरः।
कृष्णाश्रयो नित्य मन्त्रभक्तः सदा शुचिः ॥६२॥
सद्धर्म साधको नित्यं सदाचार नियोजकः।
संप्रदायी कृपापूर्णो विरागी गुरु रूच्यते ॥६३॥
एवमादि गुणो प्रायः शुश्रूषु गुरुपादयोः।
गुरौ नितान्त भक्तश्च मुमुक्षुः शिष्य उच्यते ॥६४॥
यत् साक्षात् सेवनं तस्य प्रेम्ना भगवतो भवेत्।
समीक्षः प्रोच्यते प्राज्ञैर्वेद वेदाङ्ग वेदिभिः ॥६४॥
त्रायस्व भो जगन्नाथ गुरो संसारवह्निना।
दग्धश्च कालदष्टश्च त्राहि मां भवसागरात् ॥६६॥
श्रीनन्दनन्दन कृष्णः सर्वदेव शिरोमणिः।
पादाम्बुजैक भागैक दीक्षा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥६७॥

श्रीगुरु चरणों की शरण ग्रहण करे ॥६०॥ गुरु कैसा होना चाहिये उस का विवरण कहते हैं,—शान्त, अन्तरिन्द्रिय निग्रह विमत्सर कृष्ण भक्त, कृष्णभक्ति को छोड़कर अन्य प्रयोजन शून्य, भक्ति को छोड़कर अन्य साधन हीन, श्रीमान् क्रोध लोभ रहित, श्रीकृष्ण रस-तत्त्वज्ञ उत्तम रूपसे श्रीकृष्ण मन्त्र वेत्ता श्रीकृष्णाश्रय, नित्य मन्त्रोपासक, सदा शुचि ॥६१-६२॥ सद्धर्म साधक नित्य सदाचार प्रवर्त्तक, दाता कृपापूर्णो, विरागी ही गुरु होने का योग्य है ॥६३॥ शिष्य भी उक्त सब लक्षणों से पूर्ण होना चाहिये, विशेष कर श्रीगुरु चरण से तत्त्व सुनने की इच्छुक हो, गुरुभक्त हो, सेवारत एवं मुमुक्षु होना आवश्यक है ॥६४॥ जिन गुरु की सेवा ही साक्षात् भगवान् की सेवा है, वेद वेदाङ्ग को जानने वाले व्यक्ति उक्त गुरुसेवा को ही मुक्ति कहते हैं। ॥६५॥ हे जगन्नाथ, हे गुरो, मुझे रक्षा करो, भवसागर से उबारो, मैं काल-सर्प से ग्रस्त हूँ। संसार वह्नि से भी दग्ध हूँ ॥६६॥ श्रीनन्द

आगत्य च गुरौ: पादे । निजवृत्तं निवेदयेत् !
ससन्देहानं प्राह्नत्य बोधयित्वा पुन: पुन: ॥९८॥
स्वपाद प्रणतं शान्तं शुश्रूषुं निज पादयो: ।
अति हृष्टमना: शिष्यं गुरुरध्यापयेन्मनुम् ॥९९॥
चन्दनेन मृदावापि विलिखेत् बाहु मूलयो: ।
वाम दक्षिणयो विप्र शङ्ख चक्रे यथा क्रमम् ॥१००॥
ऊर्द्ध्व पुण्ड्रं तत: कुर्याद् भालादिषु विधानत: ।
ततो मन्त्र द्वयं तस्य, दक्ष कर्णे विनिर्दिशेत् ॥१०१॥
मन्त्रार्थञ्च वदेत्तस्मै यथावदनुपूर्वश: ।
दास शब्द युतं नाम धार्य्य तस्य प्रयत्नत: ॥१०२॥
ततोऽतिभक्त्या सस्नेहं वैष्णवान् भोजयेद् बुध: ।
श्रीगुरुं पूजयेच्चापि वस्त्रालङ्कारादिभि: ॥१०३॥
सर्वस्वं गुरवे दद्यात् तदर्द्धं वा महामुने !
स्व देहमपि निक्षिप्त पुरस्तिष्ठेदकिञ्चन: ॥१०४॥

नन्दन कृष्ण सर्वदेव शिरोमणि हैं, उनके चरणाम्बुज का भजन को मनीषीगण दीक्षा कहते हैं ॥९७॥ श्रीगुरु के समीप में आकर अपना सब वृत्तान्त कहे, श्री गुरुदेव उसका सन्देह को मिटाकर पुन: पुन: सचेत करेंगे ॥९८॥ सेबारत, प्रणत, शान्त शिष्य को देखकर गुरु आनन्द मनसे दीक्षा प्रदान करें ॥९९॥ चन्दन, अथवा मृत्तिका के द्वारा बाहु मूलमें (वाम दक्षिण में) शङ्ख चक्र का अङ्कन करें ॥१००॥ पश्चात् ऊर्द्ध्वपुण्ड्र रचना कपाल आदि स्थानोंमें करें ॥१०१ अनन्तर दाहिने कर्ण में मन्त्रद्वय का उपदेश करें। मन्त्रार्थ को कहे एवं दास शब्द युक्त नामकरण भी करें ॥१०२॥ इस के वाद ही अति प्रयत्न श्रद्धा से स्नेह पूर्वक वैष्णव को भोजन प्रदान करें। श्री गुरुपूजा वस्त्र अलङ्कार प्रभृति के द्वारा भी करें ॥१०३॥ श्रीगुरुदेव को सर्वस्व प्रदान करे, सम्भव न होने से उसका आधा समर्पण करे, निज देहको समर्पण कर अकिञ्चन होकर श्रीगुरु के समीप में विनीत भाव से अवस्थान करे ॥१०४॥ जो जन इस पञ्च संस्कार के द्वारा संस्कृत

एतैः पञ्चभिर्विद्वान् संस्कारैः संस्कृतो भवेत् ।
दास्य भागी सकृष्णस्य नान्यथा कल्प कोटिभिः ॥१०५॥
अङ्कनं चोर्द्ध्व पुण्ड्रञ्च मन्त्र नाम विधारणम् ।
पञ्चमो याग इत्युक्त संस्कार पूर्व सूरिभिः ॥१०६॥
अङ्कनं शङ्ख चक्राद्यैः सच्छिद्र पुण्ड्र उच्यते ।
दास शब्द युतं नाम मन्त्रो युगल संज्ञकम् ॥१०७॥
गुरु वैष्णवयोः पूजा याग इत्यभिधीयते ।
एते परम संस्कारामया ते परिकीर्त्तिताः ॥१०८॥
अथ तुभ्यं प्रपन्नां धर्मान् वक्ष्यामि नारद ।
यानास्थायगमिष्यन्ति हरिधाम नराः कलौ ॥१०९॥
इत्थं गुरोर्लब्ध मन्त्रो गुरुभक्ति परायणः ।
सेवमानं गुरुं नित्यं तत् कृपां भावयेत् सुधीः ॥११०॥
सतां धर्मास्ततः शिक्षेत् प्रपन्नानां विशेषतः ।
स्वेष्ट देव धिया नित्यं वैष्णवान् परितोषयेत् ॥१११॥

होता है, वह ही श्रीकृष्ण चन्द्र के दास्य प्राप्त करने का अधिकारी होता है। अन्यथा कल्प कोटि काल में भी अधिकारी होना सम्भव नहीं है ॥१०५॥ अङ्कन, ऊर्द्ध्वपुण्ड्र, मन्त्र, नामकरण, एवं पञ्चम देव पूजा, इस को पञ्च संस्कार मुनिगण कहते हैं ॥१०६॥ शङ्ख चक्रादिका अङ्कन, मध्यमें अन्तराल युक्त तिलक को ऊर्द्ध्वपुण्ड्र कहते हैं, दास शब्द युक्त को ही नाम कहा जाता है, युगल मन्त्र ही मन्त्र है ॥१०७॥ गुरु और वैष्णवों की पूजा सम्मान प्रदान करने का नाम याग है, यह सब परम संस्कार है, जो मैंने तुमसे कहा है ॥१०८ नारद ! फिर से मैं तुम को प्रपन्न धर्म के बारे में कहूँगा जिस को अवलम्बन कर मानव हरिधाम को कलि में पहुँच जाते हैं ॥१०९॥ इस प्रकार गुरुदेव से मन्त्र लाभ करने के बाद गुरुभक्ति परायण सुधी व्यक्ति नित्य उनकी सेवाकर उनकी कृपाका अधिकारी होगा ॥११० श्रीगुरुदेव से सन्तधर्म की शिक्षा करे, विशेष कर प्रपन्न धर्म की शिक्षा करे, इष्टदेव बुद्धि से नित्य वैष्णवों का सन्तोष कर कार्य करें ॥१११॥

ताड़नं भर्त्सनं कामी भोग्यत्वेन यथा स्त्रियाः ।
गृह्णाति वैष्णवानाञ्च तसद् ग्राह्यं तथाबुधैः ॥११२॥
ऐहिकामुष्मिकीचिन्ता न च कार्या कदाचन ।
ऐहिकन्तु सदा भाव्यं पूर्वा चरित कर्मणाम् ॥११३॥
आमुष्मिकं तथा कृष्णः स्वयमेव करिष्यति ।
अतो हि तत् कृते त्याज्यः प्रयत्नः सर्वथा नरैः ॥११४॥
सर्वोपाय परित्यागः कृष्णोपायनमर्चनं ।
सुचिरं प्रोषितेकान्त यथा पति परायणा ॥११५॥
प्रियानुरागिणी दीना तस्या सङ्गैक काङ्क्षिणी ।
तद् गुणान् भावये न्नित्यं गायत्यपि शृणोति च ॥११६॥
श्रीकृष्ण गुण लीलादेः स्मरणादि तथाचरेत् ।
न पुनः साधनत्वेन कार्यं तत्तु कदाचन ॥११७॥
चिरं प्रोष्यागतं कान्तं प्राप्य कान्ताधिया तथा ।
चुम्बन्ती वालिङ्गन्ती नेत्रान्तेन पिवन्त्यपि ॥११८॥
ब्रह्मानन्दं गतं वामु सेवते परया मुदा ।

कामी व्यक्ति भोग्या स्त्री से जिस प्रकार निरन्तर ताड़न भर्त्सन को प्राप्त कर सहन करता है, उस प्रकार वैष्णवों से भी ग्रहण करें ॥११२ इस लोक और परलोक की चिन्ता न करे, पूर्व आचरित कर्मों की चिन्ता ही अवश्य करे ॥११३॥ अतएव उसके लिए प्रयत्न न करे। ॥११४॥ जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री पति के प्रवास गमन से सब भोग परित्याग कर पति चिन्ता में रत रहती है, वैसे सब चिन्ता को छोड़ कर मानव श्रीकृष्ण सेवा की चिन्ता करें ॥११५॥ प्रियानु-रागिणी दीन होकर सङ्ग प्रार्थी होकर पति गुण-गान पति-चिन्ता, पति चरित्र सुनती है, वैसे ही कृष्ण के विषयों में रत होना चाहिये ॥११६॥ श्रीकृष्ण गुण-लीलादि का स्मरणादि नित्य उस प्रकार करें, किन्तु साधन मानकर न करे ॥११७॥ चिरकाल विदेश में रहकर घर को आने पर कान्ता जिस प्रकार अपनी बुद्धि से नेत्रान्त के द्वारा चूमती, आलिङ्गन करती और पान करती है ॥११८॥

श्रीमदर्चावतारे च तथा परिचरेद्धरिं ॥११९॥
अनन्य शरणो नित्यं तथैवानन्य साधनः ।
अनन्य साधनार्थो च स्यादनन्य प्रयोजनः ॥१२०॥
नान्यञ्च पूजयेद् देवं न नमेत्तं स्मरेन्न च ।
न च पश्येन्न च गायेत् न च निन्देत् कदाचन ॥१२१॥
नान्योच्छिष्टञ्च भुञ्जीत नान्य शेषञ्च धारयेत् ।
अवैष्णवानां सम्भाषणं वन्दनादि विवर्जयेत् ॥१२२॥
ईशवैष्णवयो निन्दां शृणुयान्न कदाचन ।
कर्णौ पिधाय गन्तव्यं शक्तोदण्डं समाचरेत् ॥१२३॥
आश्रित श्चातकीं वृत्तिं देह पातावधि द्विज ।
द्वयस्यार्थं भावयता स्थेयमित्येव मे मतिः ॥१२४॥
सरः समुद्रनद्यादीन् विहाय चातकी यथा ।
तृषितो म्रियते वापि याचते वा पयोधरात् ॥१२५॥
एवमेव प्रयत्नेन साधनानि परित्यजन् ।
स्वेष्ट देवौ सदा भाव्यौ गति स्तौ मे भवेदिति ॥१२६॥

ब्रह्मानन्द लाभ के समान परमानन्द से श्रीविग्रह की सेवा करे, श्री प्रभु अर्च्चावतार होते हैं ॥११९॥ नित्य अनन्य शरण अनन्य साधन अनन्य प्रयोजन होकर अनन्य साधनार्थी बने ॥१२०॥ अन्य देवता की पूजा नमस्कार, स्मरण, दर्शन, गान, निन्दादि कभी न करें ॥१२१ दूसरे की उच्छिष्ठ भोजन अवशेष धारण प्रभृति न करे, अवैष्णव के साथ वार्त्तालाप वन्दनादि वर्जन करे, वैष्णवों की निन्दा कभी भी न सुने, कर्ण, वन्दकर वहाँ से भागजाय सामर्थ्य होने पर निन्दाकारी को दण्ड प्रदान करे ॥१२२-१२३॥ हे द्विज शरीर त्याग पर्यन्त व्रत लेकर चातकी वृत्तिसे श्रीभगवान् वैष्णवों की सेवामें रत होवे ॥१२४ नदी सरोवर, समुद्र आदि के जल को छोड़कर चातकी जिस प्रकार तृष्णा से मर जाने पर भी केवल पयोधर से ही जल की कामना करती है ॥१२५॥ इस प्रकार प्रयत्न से साधन सब को छोड़कर निज इष्ट देव की चिन्ता करे और मेरी गति वह ही है, ऐसा माने

स्वेष्ट देव तदीयानां गुरोरपि विशेषतः ।
आनुकूल्ये सदास्थेयं प्रातिकूल्यं विवर्जयेत् ॥१२७॥
सकृत् प्रपन्न रक्षादि कल्यानुगुणतां तयोः ।
विचिन्त्य विश्वसयेदेतौ मामवश्यमविष्यतः ॥१२८॥
संसार सागरान्नाथो पुत्र मित्र गृहाकुलात् ।
गोप्तारौ मे युवामेव प्रपन्न भय भञ्जनौ ॥१२९॥
योऽहं ममास्ति यत् किञ्चिदिह लोके परत्र च ।
तत् सर्वं भवतोरद्य चरणेषु मयार्पितं ॥१३०॥
अहमस्म्यपराधानामालय स्त्यक्त साधनः ।
अगतिश्च ततोनाथौ भवन्तौ मे भवेद्गतिः ॥१३१॥
तवास्मि राधिका नाथ कर्मणा मनसागिरा ।
कृष्णकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम ॥१३२॥
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ ।
प्रसादं कुरुतं दास्यं मयि दुष्टेऽपराधिनि ॥१३३॥
इत्येवं जपतां नित्य गातव्यं पद्य पञ्चकम् ।

॥१२६॥ इष्टदेव और इष्टदेव के सम्बन्धी जनों के विशेष कर श्री गुरुदेव के आनुकूल्य में सदा रहे, प्रातिकूल्य का वर्जन सर्वदा करे। ॥१२७॥ प्रपन्न जन की रक्षा प्रभु करते हैं, श्री प्रभु के इस गुण की चिन्ताकर विश्वास कर, मुझे भी रक्षा करेंगे, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करे ॥१२८॥ हे नाथ! पुत्र मित्र गृह से मैं आकुल हूँ, आप दोनों प्रपन्न भय भंजन हैं, आप मेरी रक्षा करें ॥१२९॥ इस लोक और पर लोक में जो भी कुछ मेरा है, मैं आज सब कुछ आप दोनों के चरणों में समर्पण कर दिया ॥१३०॥ मैं तो सब अपराधों का आलय हूँ। निखिल साधन हीन हूँ। अगति हूँ। हे नाथ! अतः आप दोनों ही मेरी शरण हैं ॥१३१॥ हे राधिका नाथ! मैं कर्मणा मनसा गिरा तुम्हारे ही हूँ। हे कृष्णकान्ते! मैं तुम्हारे ही हूँ। तुम दोनों ही मेरी गति हो ॥१३२॥ मैं शरण में आया हूँ, मैं प्रपन्न हूँ। आप दोनों करुणानिकराकर हैं, प्रसन्न हों, दास्य प्रदान करें, मैं दुष्ट हूँ।

अचिरादेव तदादास्य मिच्छतामुनिसत्तम ! ॥१३४॥
बाह्य धर्मोमया तुभ्यं संक्षेपेणोपवर्णिता: ।
आन्तर: परम धर्म: प्रपन्नानामथोच्यते ॥१३५॥
कृष्णप्रिया सखीभावं समाश्रित्य प्रयत्नत: ।
तयो: सेवां प्रकुर्वीत दिवानक्त मतन्द्रित: ॥१३६॥
एष ते कथितो धर्म आन्तरोमुनि सत्तम ।
गुह्याद् गुह्यातरो ह्येष गोपनीय: प्रयत्नत: ॥१३७॥
उक्तोमन्त्र स्तदङ्गानि तथा तस्याधिकारिण: ।
तद्धार्माश्च तथा तेभ्य: फलं मन्त्रस्य नारद ॥१३८॥
अनुतिष्ठत्वमप्येते तयो र्दास्यमवाप्स्यसि ।
स्वाधिकां रक्षयेद् विप्र सन्देहो नात्र कश्चन ॥१३९॥
सकृन्मात्र प्रपन्नोय स्तवास्मीति च याचते ।
निजदास्यं हरिर्द द्यान्न मेऽत्राऽस्ति विचारणा ॥१४०॥
तत्र ते वर्णयिष्यामि रहस्य परमाद्भुतम् ।
श्रुतं पूर्वं मया कृष्णात् साक्षात् भगवत: किल ॥१४१॥

अपराधी हूँ ॥१३३॥ इस प्रकार जप कर पञ्च पद्य का पाठ प्रतिदिन करें हे मुनिसत्तम ! दास्य की प्रार्थना करे। बाह्य धर्म का कथन संक्षेप से मैंने किया है, प्रपन्नके लिए जों आन्तरधर्म है, उसको कहता हूँ ॥१३४-१३५॥ भानुनन्दिनी के सखी भाव को ग्रहण कर अति यत्नसे दिन रात श्रीराधाकृष्ण की अनलस भावसे सेवा करे ॥१३६॥ हे मुनिसत्तम ! यह ही आन्तर धर्मकी वात मैंने कहा, गुह्यसे गुह्य है, और गोपनीय से गोपनीय है ॥१३७॥ नारद, मन्त्र, मन्त्र रहस्य, मन्त्रके अङ्ग समूह, उसका अधिकारी, अधिकारी का धर्म, और मन्त्र का फल भी कहा ॥१३८॥ श्रीराधा कृष्ण के दास्य की अभिलाष हो तो तुम भी इस का अनुष्ठान करो, हे विप्र ! इस में सन्देह न करो, फल प्राप्त करोगे ॥१३९॥ एकवार मात्र भी जो कहता है, कि मैं प्रपन्न हूँ, मैं तुम्हारा हूँ, श्रीहरि उसको निज दास्य दान करते हैं, इसमें कुछ भी विचार की आवश्यकता नहीं है ॥१४०॥ अति अद्भुत

मन्त्र रत्न मह पूर्व जपन् कैलास मूर्द्धनि।
ध्यायन्नारायणं देव मवसं गहनेवने ॥१४२॥
ततस्तु भगवांस्तुष्ट प्रादुरासीत् ममाग्रतः।
व्रियतां वर मित्युक्ते मयाप्युद्घाट्य लोचनम् ॥१४३॥
दृष्टो देवः श्रियासार्द्धं सस्थितो गरुड़ोपरि।
प्रणिपत्य मुहुश्चैनमवददश्च श्रियपतिम् ॥१४४॥
यद्रूपं ते कृपासिन्धो परमानन्द दायिनम्।
सर्वानन्दाश्रयं नित्यं मूर्त्तञ्च सर्वतोऽधिकम् ॥१४५॥
निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं ब्रह्मेति च विदुर्बुधाः।
तदहं द्रष्टु मिच्छामि चक्षुर्भ्यां परमेश्वर ॥१४६॥
ततोमामाह भगवान् प्रसन्नः कमलापतिः।
तदद्य द्रक्ष्यसे रूपं यत्ते मनसि कांक्षितम् ॥१४७॥
यमुना पश्चिमे कूले गच्छ वृन्दावनं मम।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः श्रिया सार्द्धं जगत् पतिः ॥१४८॥

रहस्य को मैं तुम्हें कहता हूँ, जिस को मैंने भगवान् कृष्ण से ही पहले सुना था ॥१४१॥ कैलास पर्वत में मैं मन्त्ररत्न का जप करते करते श्री नारायण का ध्यान किया, इस प्रकार गहन वन में रहने लगा ॥१४२॥ उस से सन्तुष्ट होकर भगवान् मेरे सामने प्रकट हो गए, 'वर लो' कहे, मैंने नयन को खोल कर ॥१४३॥ देखा, गरुड़ के उपर भगवान् श्री के साथ विराजमान हैं, मैंने प्रणाम किया और श्री पति को कहा ॥१४४॥ हे कृपासिन्धु, आप का जो रूप, सब से अधिक परमानन्द प्रद, सर्वानन्दाश्रय, नित्य, मूर्त्त, सब से अधिक हो ॥१४५॥ निर्गुण, निष्क्रिय, शान्त, ब्रह्मा, जिस को बुधगण कहते हैं, परमेश्वर ! मैं उस रूपको अपने दोनों नेत्रोंसे देखना चाहता हूँ ॥१५६ कमला पति भगवान् प्रसन्न होकर उसके बाद मुझ से कहें, आज तुम उस रूप को देखोगो, जिस को देखने की तुम्हें आकाङ्क्षा है ॥१४७॥ यमुना पश्चिम कूल में मेरा वृन्दावन धाम है, वहाँ जाओ, ऐसा कह कर जगत् पति अन्तर्धान हो गए ॥१४८॥ मैं मङ्गलमय सुन्दर यमुना

अहमप्यागमं तर्हि यमुनायास्तटं शुभम् ।
अत्र कृष्णमपश्यंश्च सर्वदेवेश्वरेश्वरम् ॥१४६॥
गोपवेशधरं कान्तं किशोर वयसान्वितम् ।
प्रियास्कन्धे सुविन्यस्त वाम हस्तं मनोहरम् ॥१५०॥
हसन्तं हासयन्तञ्च मध्ये गोपी कदम्बकम् ।
स्निग्ध मेघसमाभास कल्याण गुणमन्दिरम् ॥१५१॥
प्रहस्य च ततः कृष्णो मामाहामृत भाषणः ।
अहं ते दर्शनं यातं ज्ञात्वा रुद्र तवेप्सितम् ॥१५२॥
यदद्य मे त्वया दृष्ट मिदं रूपमलौकिकम् ।
घनीभूतामलप्रेमसच्चिदानन्दविग्रहम् ॥१५३॥
नीरूपं निर्गुणं व्यापि क्रिया हीन परात् परम् ।
वदन्ति वेद शिरस इदमेव ममानघम् ॥१५४॥
प्राकृतंक गुणाभावादनन्तत्वात्तथेश्वर ।
अप्रसिद्धया मद्गुणानां निर्गुणं मां वदन्ति हि ॥१५५॥
अदृश्यत्वान्ममैतस्य रूपस्य चर्मचक्षुषा ।
अरूपं मां वदन्त्येते वेदाः सर्वे ममेश्वराः ॥१५६॥
व्यापकत्वाच्चिदंशेन मां ब्रह्मेति विदुर्बुधाः ।

तट को गया, और वहीँ पर सर्वदेवेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण का देखा, मनोहर गोपवेश, किशोर वयस प्रिया राधाके साथ बाँए हात से गल बेया देकर हैं ॥१४६-१५०॥ गोपी कदम्ब को हँसाते थे और हंसते थे, देखने में स्निग्ध मेघ के समान कान्ति और कल्याण गुण मन्दिर थे ॥१५१॥ पश्चात् अमृत भाषण श्रीकृष्ण ने मुझ को हँसकर कहा, मैं तुम्हारे मनको जानकर ही दर्शन दिया ॥१५२-५३॥ नीरूप निर्गुण व्यापी, क्रिया हीन परात् पर रूप से मेरा इस रूप को ही श्रुतिगण कहते हैं ॥१५४॥ हे ईश्वर ! प्राकृत गुण न रहने कारण अनन्त अप्रसिद्ध गुण युक्त मुझ को निर्गुण कहते हैं ॥१५५॥ चर्म चक्षुषा मेरा यह रूप अदृश्य है, अतः मेरा रूप को वेद-गण अरूप कहते हैं। ॥१५६॥ चिदंश द्वारा व्यापक होने से बुधगण ब्रह्म रूप से मुझको

अकर्तृत्वात् प्रपञ्चस्य निष्क्रियं मां वदन्त्यपि ॥१५७॥
मायागुणैर्युता मेऽशाः कुर्वन्ति सृजनादिकम् ।
न करोमि स्वयं किञ्चित् सृष्ट्यादिकमहं शिव ॥१५८॥
अहमासां महादेव गोपीनां प्रेमविह्वलः ।
क्रियान्तरं न जानामि नात्मानमपि मानद ॥१५९॥
विहराम्यनया नित्यमस्य प्रेमवशीकृतः ।
इमां तु मत्प्रियां विद्धि राधिकां परदेवताम् ॥१६०॥
अस्याश्च परितः पश्य सख्यः शत सहस्रशः ।
नित्याःसर्वा इमारुद्र यथाहं नित्य विग्रहः ॥१६१॥
सखायः पितरौ गोपा गावो वृन्दावनं मम ।
नित्यमेव सर्वमेतत् चिदानन्दरसात्मकम् ॥१६२॥
इव मानद कन्दाख्यं विद्धि वृन्दावनं मम ।
यस्मिन् प्रवेश मात्रेन न पुनः संसृतिं विशेत् ॥१६३॥
मद्वनं प्राप्य योमूढः पुनरन्यत्र गच्छति ।
स आत्महा महादेव सर्वथा नात्र संशयः ॥१६४॥

जानते हैं। प्रपञ्च कर्तृत्व मुझ में आरोपित न होने से लोक मुझे निष्क्रिय कहते हैं ॥१५७॥ माया गुणों से युक्त होकर मेरे अंश सब सृष्ट्यादि कार्य करते रहते हैं। हे शिव ! स्वयं मैं कुछ नहीं करता हूँ ॥१५८॥ महादेव मैं गोपीयों के प्रेम में विह्वल हूँ। हे मानद ! क्रियान्तर को भी नहीं जानता हूँ, और अपने को भी नहीं जानता हूँ ॥१५९॥ इस के प्रेम से वशीभूत होकर नित्य ही इस के साथ ही विहार करता हूँ। इस को मेरी प्रिया जानना, यह राधिका पर देवता है ॥१६०॥ देखो, इस के चारों ओर शत सहस्र सखियाँ हैं, मैं जिस प्रकार नित्य विग्रह हूँ, ये सब भी वैसा नित्य विग्रह हैं ॥१६१ हे रुद्र ! सखा, पिता माता, गोप, गोपी, वृन्दावन, ये नित्य ही है, सब चिदानन्द रसात्मक हैं ॥१६२॥ यह वृन्दावन, आनन्द कन्द नाम से प्रसिद्ध है, जिस में प्रवेश करने से ही पुनर्जन्म नहीं होता है ॥१६३ मेरा वृन्दावन में आकर जो मूढ़ जन अन्यत्र गमन करता है, महादेव

वृन्दावनं परित्यज्य नैव गच्छाम्यहं क्वचित् ।
निवसाम्यनया सार्द्धं महमत्रैव सर्वदा ॥१६५॥
इत्येवं सर्वमाख्यातं यत्ते रुद्र हृदिस्थितम् ।
कथयस्व ममेदानीं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥१६६॥
ततस्तमब्रुवं देव महञ्च मुनिसत्तम ।
ईदृशस्त्वं कथं लभ्यस्तमुपायं वदस्व मे ॥१६७॥
ततोमामाह भगवान् साधुरुद्रत्वयोदितम् ।
अति गुह्यतमं ह्येतत् गोपनीयं त्वयानघ ॥१६८॥
सकृदावां प्रपन्नो यः स्त्यक्तोपाय उपासते ।
गोपीभावेन देवेश समामेति न चेतर ॥१६९॥
यो मामेव प्रपन्नश्च मत् प्रियां न महेश्वर ।
न कदापि समाप्नोति मामेवते मयोदितम् ॥१७०॥
सकृदेतां प्रपन्नो य स्तवास्मीति वदेदपि ।
साधनेन विनाप्येष मामाप्नोति न संशयः ॥१७१॥

वह आत्मघाती होता है, इस में कोई संशय नहीं है ॥१६४॥ मैं वृन्दावन को छोड़कर कभी भी कहीं नहीं जाता हूँ। इसी स्थान में मैं राधा के साथ नित्य निवास करता हूँ ॥१६५॥ हे रुद्र! तुम्हारे मन में जो कुछ था, मैंने सब कुछ कहा, और कुछ सुनना चाहो तो कहो ॥१६६॥ इस के बाद मैंने उन से कहा, इस प्रकार आप की प्राप्ति मेरी कैसे होगी, उपाय कहो ॥१६७॥ पश्चात् भगवान् ने कहा उत्तम कहा, रुद्र! तुम्हारे कहना ठीक है उत्तम है. हे अनघ! यह बात अति गोपनीय है, इस को तुम सर्वथा गोपन रखना ॥१६८॥ एक बार भी शरणागत होकर हम दोनों की उपासना अन्य सहाय को छोड़कर गोपी भाव से ही करता है, हे देवेश! यह मुझ को प्राप्त करता है, अपर कोई नहीं ॥१६९॥ जो जन मेरा प्रपन्न होकर मेरी प्रिया का प्रपन्न नहीं होता है। वह कभी मुझ को प्राप्त नहीं करता, हे महेश्वर! यह मेरा कथन है ॥१७०॥ साधन के विना ही वह मुझ को प्राप्त कर सकता है, यदि वह एकबार भी तुम्हारा हूँ,

तस्मात् सर्वात्मनारुद्र मत् प्रियांशरणं व्रजेत् ।
य आशु मत् प्रिया भूत्वा मां वशीकर्त्तु मिच्छति ।
इदं रहस्यं परमं मया ते परिकीर्त्तितम् ॥१७२॥
त्वयाप्येतन्महादेव गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१७३॥
त्वमप्येतां समाश्रित्य राधिकांममवल्लभाम् ।
जपन्मे युगलं मन्त्रं सदातिष्ठ ममालये ॥१७४॥

श्रीशिव उवाच—

इत्युक्त्वा दक्षिणे कर्णे मम कृष्णोदयानिधिः ।
उपदिश्य द्वयं ह्येतत संस्कारांश्चविधायहि ॥१७५॥
सगणोऽन्तर्दधे विप्रतत्रैव मे विपश्चितः ।
अहमप्यत्र तिष्ठामि तदारभ्य निरन्तरम् ॥१७६॥
सर्वमेतन्मयातुभ्यं साङ्गमेव प्रकीर्त्तितम् ।
अधुना ववविप्रेन्द्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१७७॥

श्रीनारद उवाच—

भगवन् सर्व माख्यातं यत् पृष्ठ मया गुरो ।
अधुना श्रोतु मिच्छामि भाव मार्गमनुत्तमम् ॥१७८॥

शरण हूँ, कहता है, तो मुझ को प्राप्त करेगा ॥१७१॥ इस लिए रुद्र ! तुम मेरी प्रिया की शरण लो, जो जन सत्वर मुझ को वश में करना चाहता है, उस का वैसा करना ठीक है ॥१७२॥ यह रहस्य है, तुम भी इस को गोपन करना ॥१७३॥ तुम भी मेरी प्रिया वल्लभा राधिका को आश्रय कर मेरा युगल मन्त्रको जपकर सदा मेरा आलय में रहना ॥१७४॥ श्रीशिव ने बोला, इस प्रकार कह कर दयानिधि कृष्णने मेरा दाहिने कान में युगल मन्त्रको देकर मेरा संस्कार कर दिया ॥१७५॥ हे विप्र ! निजगण के साथ श्रीकृष्ण अन्तर्धान होगये । निरन्तर मैं भी उस समय से यहाँ पर रह रहा हूँ ॥१७६॥ मैंने तुम को साङ्गोपाङ्ग सब कुछ ही वर्णन किया । अब तुम कहो, विप्र ! क्या जानना चाहते हो ॥१७७॥ नारद जी बोले—गुरुदेव मैंने जो कुछ भी पुछा था आपने तो सब कुछ ही कहा है, अधुना, सर्वोत्तम

श्री सदाशिव उवाच—

साधु पृष्टं त्वया विप्र सर्वलोक हितैषिणा।
रहस्यमपि वक्ष्यामि तन्मे निगदितं शृणु ॥१७९॥
दासाः सखायः पितरौ प्रेयस्यश्च हरिरिह।
सर्वे नित्या मुनिश्रेष्ठास्तत्तुल्य गुण शालिनः ॥१८०॥
यथा प्रकट लीलायाः पुराणेषु प्रकीर्त्तिताः।
तथा ते नित्य लीलायां सन्ति वृन्दावने भुवि ॥१८१॥
गमनागमने नित्यं तथैव वन गोष्ठयोः।
गोचारणं वयस्यैश्च विना सुरविघातनम् ॥१८२॥
परकीयाभिमानिन्यस्तथा तस्य प्रियाजनाः।
प्रच्छन्नेनैव भावेन रमयन्ति निजं प्रियम् ॥१८३॥
आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्!
रूप यौवन सम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम् ॥१८४॥

भाव मार्ग को सुनना चाहता हूँ ॥१७८॥ सदाशिव जी बोले—हे विप्र! तुमने अच्छा पुछा है, क्योंकि तुम सबके हित चाहते हो। यह बड़ा ही रहस्य है, तो भी मैं कहूँगा, तुम मेरा कथन को सुनो ॥१७९ श्रीहरि, उन के दास, सख्या, पिता, माता, प्रेयसीगण, हे मुनिवर! सब नित्य हैं, श्रेष्ठ हैं, और उन के समान ही गुण शाली हैं ॥१८०॥ जैसे भौम वृन्दावन में प्रकट लीला के विषय पुराणों में वर्णित है, ठीक उसी प्रकार ही वे सब ही नित्य लीला में भी वृन्दावन में रहते हैं ॥१८१॥ अन्तर इतना है कि वयस्यों के साथ गोचारण, वन गमन वन से गोष्ठ में आगमन, असुर मारण को छोड़कर सब कुछ ही प्रकट लीला की भाँति ही सब लीला होती रहती है। १८२॥ उन के प्रिया गण सब परकीया भावाभिमानी होकर प्रच्छन्न भाव से ही निज प्रिय के साथ रमण करते हैं ॥१८३॥ अपने को भी उन सबके मध्य में चिन्तन करना, मनोरम रूप यौवन सम्पन्न, किशोरी, प्रेमदाकृति, नाना शिल्प कलाभिज्ञा कृष्ण के भोग के अनुरूपिणी' कृष्ण चाहने पर कहने पर भी कृष्ण के साथ सम्भोग क्रिया में पराङ्मुखी, नित्य

नाना शिल्प कलाभिज्ञां कृष्ण भोगानुरूपिणीम् ।
प्रार्थितामपि कृष्णेन ततो भोग पराङ्मुखीम् ॥१८५॥
राधिकानुचरीं नित्यं तत् सेवन परायणाम् ।
कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम् ॥१८६॥
प्रीत्यानुदिवसं यत्नात्तयोः सङ्गम कारिणीम् ।
तत् सेवन सुखास्वाद भरेणाति सुनिर्वृताम् ॥१८७॥
इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवा समाचरेत् ।
ब्राह्ममूहुर्त्त मारभ्य यावत् सान्ता महानिशा ॥१८८॥

श्री नारद उवाच—

हरे दैनन्दिनीं लीलां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
लीलामजानतां सेव्यो मनसा तु कथं हरिः ॥१८९॥

श्री सदाशिव उवाच—

नाहं जानामि तां लीलां हरे नारद तत्त्वतः ।
वृन्दादेवीं समागच्छ सा ते लीलां प्रवक्ष्यति ॥१९०॥
अविदूरे इतः स्थानात् केशितीर्थ समीपतः ।
सखि सङ्घवृतामास्ते गोविन्द परिचा रका ॥१९१॥

ही श्रीराधिका की अनुचरी बन कर उनकी सेवा परायणा होना, कृष्ण से भी अधिक श्रीराधिका में प्रेम करना, प्रेम से प्रतिदिन राधा और कृष्णका सङ्गम का सम्पादन यत्न से करना, उन दोनों की सेवा सुख से ही अति आनन्दित होना, इस प्रकार गुण रूप आचरण सम्पन्न अपने को ही चिन्तन कर वहाँपर सेवा कार्य को ब्राह्म मूहुर्त्त से आरम्भ कर महानिशा पर्यन्त यथावत् नित्य करें ॥१८४-८५-८६-८७-८८॥ सुनकर नारद जी बोले, हरि की दैनन्दिनी लीलाको तत्त्व के साथ मैं सुनना चाहता हूँ। लीला को न जानने से श्रीहरि की मानसिकी सेवा कैसे हो सकती है ॥१८९॥ सदाशिव बोले,– नारद मैं हरि की लीलाओं को नहीं जानता हूँ, वृन्दादेवी के पास जाओ, वह तुम्हें हरि की लीला कहेंगी ॥१९०॥ इस स्थान के थोड़ी दूरपर केशीतीर्थ के समीप में सखिगण के साथ श्रीगोविन्द की सेवा में रत

श्री सनत्कुमार उवाच—

इत्युक्त स्त्वं परि क्रम्य गुरुं नत्वा पुनः पुनः ।
वृन्दास्थानं जगामादौ नारद मुनिसत्तम ॥१६२॥
वृन्दापि नारदं दृष्ट्वा प्रणम्यापि पुनः पुनः ।
उवाच तां मुनि श्रेष्ठं कथमत्रागतिस्तव ॥१६३॥

श्री नारद उवाच—

त्वत्त्वो वेत्तितुमिच्छामि नैतिकं चरितं हरेः ।
तत्तदा ब्रूहि मे देवि यदि योग्योऽस्मि शोभने ॥१६४॥

श्री वृन्दोवाच—

रहस्यमपि वक्षामि कृष्ण भक्तोऽसिनारद !
न प्रकाश्यं त्वया ह्येतद् गुह्याद्गुह्यतमं महत् ॥१६५॥

निशान्त सेवा—

मध्ये वृन्दावने रम्ये पञ्चाशत् कुञ्जमण्डिते ।
कल्पवृक्षा निकुञ्जेतु दिव्यरत्न मये गृहे ॥१६६॥
निद्रितो तिष्ठतस्तल्पे निविड़ालिङ्गतौ मिथः ।
मदाज्ञा कारिभिः पश्चात् पक्षिभि र्बोधितावपि ॥१६७॥

हैं ॥१६१॥ श्री सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहने पर मुनि सत्तम नारद गुरु जी को पुनः पुनः प्रणाम एवं परिक्रमा कर के वृन्दा के निकट पहुँच गये ॥१६२॥ वृन्दा नारद को देखकर पुनः पुनः प्रणाम किया एवं मुनि श्रेष्ठ को बोले कैसा आपका आगमन हुआ ॥१६३॥ श्रीनारद जी बोले—हे देवि, शोभने ! तुम से मैं श्रीहरि की नैत्यिक चरित्र जानना चाहता हूँ, यदि मैं इस को सुनने में योग्य हूँ, तो कहो ॥१६४॥ वृन्दा बोली,—नारद कृष्ण भक्त हो, अतः रहस्य होने पर भी कहूँगी, किन्तु यह गोपनीय सेभी गोपनीय है इसलिए इसका प्रकाशन न करना ॥१६५॥ निशान्त सेवा-वृन्दावन मध्य में पचास कुञ्ज है, अनेक कल्पवृक्ष निकुञ्ज है, दिव्य रत्नमय गृह हैं ॥१६६-६७॥ उस गृह में निविड़ रूप से आलिङ्गित होकर

गाढ़ालिङ्गन निर्भेद मामोतद् भङ्ग कातरौ।
न मन स्कुरुतस्तल्पात् समुत्थातुं मनागपि ॥१९८॥
ततश्च शारिका संघैः शुकाद्यैरपितौमुदा।
बोधितौ विविधं वाक्यैः स्वतल्पादुदतिष्ठताम् ॥१९९॥
उपविष्टौ ततो दृष्ट्वा सख्यस्तल्पे मुदान्वितौ।
प्रविश्य चक्रिरे सेवां तत् कालस्योचितांतयो. ॥२००॥
पुनश्च शारिका वाक्यैरुत्थायतौ स्व तल्पतः।
गच्छतः स्व स्वभवनं भीत्युतकण्ठाकुलौमिथः ॥२०१॥
इति निशान्त सेवा में।

प्रातः सेवा—

प्रातश्च बोधितोमात्रातल्पादुत्थायसत्वरम्।
कृत्वा कृष्णो दन्तकाष्ठं बलदेव समन्वितम् ॥२०२॥
मात्रानुमोदितो याति गोशालां दोहनोत्सुकः।
राधापि बोधिता वृद्ध वयस्याभिः स्वतल्पतः ॥२०३॥

शय्या में दोनों प्रिया पीतम जू निद्रित है। आज्ञा से पक्षिगण दोनों को जगाने पर भी परस्पर और भी आलिङ्गन को निविड़ कर लिए, आलिङ्गन टूटने के भय से दोनों कातर होगए थे। उन दोनों का मन नहीं होता था शय्या से थोड़ा भी उठे ॥१९८॥ अनन्तर शारिका और शुकगण विविध वाक्य द्वारा जगाने से दोनों जगकर शय्या से जगकर शय्या में बैठगये ॥१९९॥ यह देखकर सखीगण सत्वर कुञ्ज में प्रविष्ट होकर उस समय के अनुरूप सेवा में प्रवृत्त हो गये। ॥२००॥ पुनर्वार शारिका वाक्य से शय्या से उठकर उत्कण्ठा से व्याकुल होकर अपने अपने घर के ओर चलने लगे ॥२०१॥

यह निशान्त सेवा है।

प्रातः सेवा,—प्रातः काल में मैया जगाने पर कृष्ण सत्वर शय्या से उठकर बलदेव के साथ दाँतन करने लगे ॥२०२॥ मा के अनुमति से गैया दूहने के लिए गौ-शाला का कृष्ण गये। वुड्डी और वयस्यागण जगाने से राधाभी शय्या से जग गई ॥२०३॥ दन्तकाष्ठादि

उत्थाय दन्तकाष्ठादि कृत्वाभ्यङ्गं समाचरेत् ।
स्नानवेदीं ततो गत्वा स्नापिता ललितादिभिः ॥२०४॥
भूषा गृहं व्रजेत्तत्र वयस्या भूषयन्त्यपि ।
भूषणैर्विविधै दिव्यै गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥२०५॥
ततश्च स्वजनैस्तस्याः श्वश्रूं संप्रार्थ्यंयत्नतः ।
वक्तुमाहूयते तूर्णं ससखी सा यशोदया ॥२०६॥

श्रीनारद उवाच—कथमाहूयते देवि पाकार्थं सा यशोदया ।
सतीषु पाककर्त्रीषु रोहिणी प्रमुखास्वपि ॥२०७॥

वृन्दोवाच—दुर्वाससा स्वयं दत्तो वर स्तस्यै महर्षिणा ।
इति कात्यायनीवक्त्राच्छ्रुतमासीन्मया पुरा ॥२०८॥
त्वया यत् पच्यते देवि तदन्नं मदनुग्रहात् ।
मिष्टं स्वाद्वमृतस्पर्द्धि भोक्तुरायुष्करं तथा ॥२०९॥
इत्याह्वयति तां नित्यं यशोदा पुत्रवत्सला ।
आयुष्मान् मे भवेत् पुत्रः स्वादुलोभात् तथा सती ॥२१०॥

करने के वाद शरीरमें सुगन्धि तेल सेवा हुई, अनन्तर स्नान वेदीमें बैठने पर ललिलादि सखियोंने उनको धीरे से स्नान कराया ॥२०४॥ इसके वाद वेश-भूषा के घरमें गई, वहाँपर सखीगण वेशभूषा अलङ्कार दिव्य गन्ध माला चन्दन, अनुलेपन के द्वारा उनको भूषित किए ॥२०५॥ इसके वाद यशोदा मा की सखी बुलाने के लिए आ गई। तव सास से आज्ञा लेकर सत्वर रसोई करने के लिए राधा नन्दालय को चली गई ॥२०६॥ नारद बोले देवि ! यशोदा राधाको रसोई बनाने के लिए क्यों बुलाती है, उनके यहाँ रसोई बनाने के लिए रोहिणी आदि अनेक तो हैं ? ॥२०७॥ वृन्दा वोली,—मैंने कात्यायनी के पास से पहले सुना है कि—महर्षि दुर्वासाने राधा को वर दिया है ॥२०८॥ हे देवि ! तुम जो कुछ पकाओगी, मेरे अनुग्रह से वे सब अन्न—मिष्ट स्वादु, अमृतके समान एवं आयुष्कर भी होंगे ॥२०९॥ इस लिए पुत्रवत्सला यशोदा रसोई के लिए प्रतिदिन उनको बुलाती है। मेरा पुत्र आयुष्मान् होगा और स्वादु के लोभसे

श्वश्रुश्चानुमोदिता सापि हृष्टानन्दालयं व्रजेत् ।
ससखी प्रकरा तत्र गत्वा पाकं करोति च ॥२११॥
कृष्णोऽपि दुग्ध्वा गाः काश्चिद् दोहयित्वा जनैः पराः ।
आगच्छति पितुर्वाक्यात् स्व गृह सखिभिर्वृतः ॥२१२॥
अभ्यङ्गमर्दनं कृत्वा दासैः संस्नापितो मुदा ॥
धौतवस्त्रधरः स्रग्वी चन्दनाक्तकलेवरः ॥२१३॥
द्विफालबद्धकेशश्च ग्रीवा भालोपरि स्फुरन् ।
चन्द्राकार स्फुरद् भाल तिलकालकरञ्जितः ॥२१४॥
कङ्कणाङ्गद केयूर रत्नमुद्रालसत्करः ।
मुक्ताहार स्फुरद्वक्षा मकराकृतिकुण्डलः ॥२१५॥
मुहुराकारितो मात्रा प्रविशेद् भोजनालये ।
अवलम्ब्य करं मातुर्बलदेव मनुव्रतः ॥२१६॥
भुक्त्वा च विविधान्नानि मात्रा च सखिभिर्वृतः ।
हासयन् विविधैर्वाक्यैः सखीं स्तैर्हासितः स्वयम् ॥२१७॥

अधिक भोजन भी करेगा ॥२१०॥ सासकी अनुमति से अति आनन्द से राधा नन्दालय को गई, और सखीगण भी साथ गई, और रसोई की ॥२११॥ कृष्णने भी कुछ समय गैया दुहा, कुछ दूसरेसे दुहवाया, अनन्तर पिता के आदेश से सखाओं के साथ घरको आगये ॥२२१॥ दासीने कृष्ण के अङ्गमें तेल मालिश किया, और नहलाया, साफ कपड़े पहन कर सुगन्ध माला चन्दनसे भूषित हो गये ॥२१३॥ माथे सिँथी काटकर केशों का चूड़ा बनाया कुछ केश को ग्रीवा, कपाल के ओर लटकाया, गोल चन्द्राकार तिलक की रचना कपाल में की वह भी केश से सुशोभित रहा ॥२१४॥ कङ्कण, अङ्गद, केयूर, रत्न मुद्रिका के द्वारा हस्त सुशोभित है, वक्षस्थल में मुक्ताहार शोभित है, मकराकृति कुण्डल द्वारा वदन सुशोभित है ॥२१५॥ मा बारम्बार बुलाने से माके आँगुली पकड़कर बलदेव के साथ भोजनालय को गये ॥ विविध अन्न व्यञ्जनों का भोजन आपने किया, मा और वयस्यों के साथ भोजन विनोद किया, विविध विनोद वाक्यसे

इत्थं भुक्त्वा तथाचम्य दिव्य खट्टोपरि क्षणात् ।
विश्रमेत् सेवकैर्दत्तं ताम्बुलं विभजन्नदन् ॥२१८॥
राधापि भोजनानन्दं दृष्ट्वा यशोदया हूता ।
ललितादि सखीवृता भुङ्क्तेऽन्नं लज्जयान्विता ॥२१९॥
इति प्रातः सेवा ॥

अथ पूर्वाह्न सेवा—

गोपवेशधरः कृष्णो धेनुवृन्द पुरःसरः ।
व्रजवासिजनैः प्रीत्या सर्वैरनुगतः पथि ॥२२०॥
पितरं मातरं नत्वा नेत्रान्तेन प्रियागणान् ।
यथायोग्यं तथा चान्यान् सन्निवर्त्य वनं व्रजेत् ॥२२१॥
वनं प्रविश्य सखिभिः क्रीड़ित्वा च क्षणं ततः ।
वञ्चयित्वा च तान् सर्वान् द्वित्रैः प्रियसखैर्युतः ॥२२२॥
सङ्केतकं व्रजेद्धर्षात् प्रिया सन्दर्शनोत्सुकः ।

सखागणों को हँसा कर एवं उन सबके विनोद वाक्यसे स्वयं हंसकर भोजनलीला को सम्पन्न किया ॥२१७॥ इस प्रकार से भोजन एवं भोजनान्तमें आचमन कर दिव्य पालङ्कके उपर कुछदेर विश्राम किया, उस समय सेवकगण ताम्बुल प्रदान करने लगे, आपने दूसरे को ताम्बुल बँटकर दिया और स्वयं भोजन किया ॥२१८॥ श्रीराधाने भी भोजनानन्द को देखा, एवं मा यशोदा बुलाने पर ललितादि सखियों के साथ मिलकर लज्जा से सङ्कुचित भावसे भोजन किया ॥२१९॥

इति प्रातः सेवा ॥

अथ पूर्वाह्न सेवा—श्रीकृष्ण गोपवेष से भूषित होकर धेनुवृन्द को आगे आगे लेकर व्रजवासिगण के साथ आनन्द से रास्तेमें निकल पड़े ॥२२०॥ उस समय पिता माता भी पीछे पीछे जा रहे थे, उनको आपने प्रणाम कर लौटकर घर जाने के लिए राजी किया, नेत्रान्त दृष्टि से प्रियागणको सुखी किया तथा अन्य सब अनुवर्त्तीयों को लौट जानेके लिए सम्मत कर गौ चराने के लिए बन को चले गए ॥२२१॥ बनमें जाकर सखाओंके साथ कुछ क्षण तक खेलकर सखायों को बञ्चना

सापि कृष्णे वनं याते दृष्ट्वा तं गृहमागता ॥२२३॥
सूर्यादि पूजा व्याजेन कुसुमाद्याहृतिच्छलात् ।
वञ्चयित्वा गुरून् याति प्रियसङ्गेच्छया वनम् ॥२२४॥
इति पूर्वाह्न सेवा ॥

अथ मध्याह्न सेवा—

इत्थं तौ बहुयत्नेन मिलित्वा स्वगणैर्वृतः ।
विहारैर्विवधै स्तत्र वने विक्रीड़ितो मुदा ॥२२५॥
आन्दोलिका शाखारुढ़ौ सखीभिर्दोलितौ क्वचित् ।
क्वचिद्वेणुं करस्त्रस्तं प्रियया चोरितां हरिः ॥२२६॥
अन्वेषयन्न पालब्धो विप्रलब्धः प्रियागणैः ।
हासितो बहुधा ताभिर्हृतस्व इव तिष्ठति ॥२२७॥
वसन्त ऋतुना जुष्टं वनखण्डं क्वचिन्मुदा ।
प्रविश्य चन्दनाम्भाभिः कुङ्कुमादिजलैरपि ॥२२८॥
विषिञ्चतो यन्त्र मुक्त स्तत् पङ्कुनापितौ मिथः ।

कर वहाना वनाकर दो तीन सखा को साथ लेकर प्रिया को देखनेके लिए सङ्केत स्थानको गये, प्रिया राधा भी कृष्ण को वनको जाते देखकर घरको आ गई, और सूर्यपूजा के वाहने से पुष्प चयन के छलसे सास को ठगकर कृष्ण के साथ मिलने के लिए चली गई ॥ २२३-२४॥

इति पूर्वाह्न लीला ॥

अथ मध्याह्न लीला— इस प्रकार प्रिया प्रियतम दोनों अनेक यत्न से मिलकर निजजनों के साथ वन भ्रमण आदि अनेक प्रकार क्रीड़ादि किये ॥२२५॥ कभी तो झूला झूलने के लिए झूलामें बैठ गये, और सखियोंने झूलाया। कभी तो वेणु हातसे खिसक जानेसे सखियोंने छिपा लिया ॥२२६॥ ढूँढ़ने लगे तो किसीने वञ्चना की, किसीने गाली दी, किसीने हँसी की, कृष्ण—धन चोरी जानेसे जैसे अवस्था होती हैं, वैसी अवस्था में पड़ गए ॥२२७-२८॥ कभी तो वसन्त ऋतुके वनमें घुस गए और आनन्द से चन्दन कुङ्कुम जलसे

सख्योऽप्येवं विषिञ्चन्ति ताश्च तौ सिञ्चतः पुनः ॥२२९॥
तथान्यर्त्तु सुजुष्टासु क्रीड़तो वनराजिषु।
तत्तत् कालोचितं नाना विहारैः सगणौ द्विज: ॥२३०॥
श्रान्तो क्वचिद् वृक्षमूलमासाद्य मुनिसत्तम।
उपविश्यासने दिव्ये मधुपानं प्रचक्रतुः ॥२३१॥
ततो मधुमदोन्मत्तो निद्रया मीलितेक्षणौ।
मिथ: पाणि समालम्ब्य कामवाणवशङ्गतैः ॥२३२॥
रिरंसु विशतः कुञ्जं स खलत् पादाब्जकौ पथि।
ततो विक्रीड़तस्तत्र करिणी यूथपौ यथा ॥२३३॥
सख्योऽपि मधुभिर्मत्तानिद्रया पिहितेक्षणाः।
अभितः कुञ्जपुञ्जेषु सर्वा एव विलिल्यरे ॥२३४॥
पृथगेकेन वपुषा कृष्णोऽपि युगपद्विभुः।
सर्वासां सन्निधि गच्छेत् प्रियाणां परितो मुहुः ॥२३५॥
रमयित्वा च ताः सर्वाः करिणी गजराड़िव।
प्रियया च तथा ताभिः सरोवरमथाव्रजेत् ॥२३६॥

नहाये और परस्पर परस्पर को जल फेंक फेंक नहलाने लगे ॥२२९॥ इसके दूसरी ऋतुके वनमें जाकर उस उस कालोचित अनेक प्रकार विहार निज गणके साथ आपने किया ॥२३०॥ कभी तो थकावट दूर करने के लिए पेड़ की छाया में बैठकर मधुपान किया।२३१ उससे मधुमदोन्मत्तता आ गई और निद्रा भी हुई परस्पर के स्पर्शसे रति क्रीड़ा की इच्छा जगी ॥२३२॥ रमण करने के लिए कुञ्ज की ओर चले गये, रास्तेमें मत्तताके कारण पैर खिसकने लगे, अनन्तर हाथी जैसे हथनी के साथ विहार करता है, वैसी ही आपने भी विहार किया ॥२३३॥ सखीगण मधुपान से मत्तताके कारण निद्रित हो गये, इस प्रकार सब कुञ्ज भर जाने के कारण कृष्ण पृथक पृथक् शरीरसे युगपत् सब कुञ्जमें जाकर प्रियाओं को सुखी बनाये ॥२३४-३५॥ करिणीयों में गजराज के समान गोपीयोंके साथ रमण करने के बाद प्रिया के साथ उन सबको लेकर सरोवर को गए ॥२३६॥ नारदजी

श्रीनारद उवाच —

वृन्दे श्रीनन्दपुत्रस्य माधुर्यक्रीड़ने कथम् ।
ऐश्वर्यस्य प्रकाशोऽभूदिति मे छिन्धि संशयम् ॥२३७॥

श्रीवृन्दोवाच—

मुने माधुर्यं मय्यास्ति लीलाशक्तिर्हरेदृ॑ढ़ा ।
तया पृथक् कृतः क्रीड़ेद् गोपिकाभिः समं हरि ॥२३८॥
राधया सह रूपेण निजेन रमते स्वयम् ।
इति माधुर्य लीलायाः शक्तिर्नैशताया हरे ॥२३९॥
जलसेकैर्मिथस्तत्र क्रीड़ित्वा सगणौ ततः ।
वासः स्रक् चन्दनैर्दिव्यभूषणैरपि भूषितौ ॥२४०॥
तत्रैव सरसस्तीरे दिव्यरत्नमये गृहे ।
अश्नीतः फलमूलानि कल्पितानि मयैवहि ॥२४१।
हरिस्तु प्रथमं भुक्त्वा कान्तया परिवेशितम् ।
द्विवाभिः सेवितो गच्छेच्छय्यां पुष्पविनिर्मिताम् ॥२४२॥
ताम्बूल-व्यजनैस्तत्र पादसम्बाहनादिभिः ।
सेव्यमानो भृशन्ताभि र्मोदितः प्रेयसीं स्मरम् ॥२४३॥

बोले वृन्दे ! माधुर्य क्रीड़ारत श्रीनन्दनन्दन का ऐश्वर्यका प्रकाश कैसे हुआ ? आप संशय का समाधान करो ॥२३७॥ वृन्दा बोली— मुनिवर ! हरिमें माधुर्यमयी दृढ़ा लीलाशक्ति हैं, उससे पृथक् कर गोपिकाओं के साथ क्रीड़ा करते हैं, राधाके साथ निज रूपसे ही स्वयं रमण करते हैं । इस प्रकार माधुर्यलीलामें हरि की ईशशक्तिका प्रकट होता ॥२३९॥ जलसेक के द्वारा परस्पर खेलकर सबके साथ वसन भूषणों से भूषित हुए ॥१४०॥ वहाँपर सरोवर के तीर में दिव्य रत्नमय घरमें भोजन के लिए फल मूलादि का भोजन आपने किया, उसका आयोजन मैंने किया था ॥२४१॥ प्रथम श्रीराधाने परिवेशन किया और श्रीकृष्णने भोजन किया और दो तीन को साथ लेकर शयन घरके अंदर गये और पुष्पशय्या में शयन किया ॥२४२॥ ताम्बूल प्रदान, पादसम्बाहन, व्यजन प्रभृतिके द्वारा सखियोंने उनकी

श्रीराधापि हरौ सुप्ते सगणा मुदितान्तरा ।
कान्तदत्तं प्रीतमना उच्छिष्टं बुभुजे ततः ॥२४४॥
किञ्चिदेव ततो भुक्त्वा व्रजेच्छय्यानिकेतनम् ।
द्रष्टुं कान्तमुखाम्भोजं चकोरीवन्निशाकरम् ॥२४५॥
ताम्बूलचर्वितं तस्य तत्रत्याभिर्निवेदितम् ।
ताम्बूलान्यपि चाश्नाति विभजन्ती प्रियालिषु ॥२४६॥
कृष्णोऽपि तासां शुश्रूषुः स्वच्छन्द भाषितं मिथः ।
प्राप्त निद्र इवाभाति विनिद्रोऽपि पटावृतः ॥२४७॥
ताश्च क्ष्वेलीं क्षणं कृत्वा मिथः कान्त कथाश्रयाः ।
व्याजनिद्रां हरेर्ज्ञात्वा कुतश्चिदनुमानतः ॥२४८॥
विमृश्य वदनं दृग्भिः पश्यन्तोऽन्योन्यमाननम् ।
लीना इव लज्जयास्युः क्षणमुचूर्न किञ्चन ॥२४९॥
क्षणादेव ततो वस्त्रं दूरीकृत्य तदङ्गतः ।
साधुनिद्रां गतोऽसीति हासयन्त्यो हसन्ति तम् ॥२५०॥

सेवा की, इससे कृष्ण राधाको सोच सोच कर सो गये ॥२४३॥ हरि सो जाने के बाद राधा आनन्दित होकर गणके साथ श्रीहरि की प्रसादी भोजन किए ॥२४४॥ कुछ ही भोजन करने के बाद ही चकोरी चन्द्रमा को जिस प्रकार देखने के लिए उत्कण्ठित होती है, वैसे ही राधा कृष्ण मुखको देखनेके लिए उत्कण्ठासे चली गई ॥२४५ सखियोंने कृष्ण के चर्वित ताम्बूल राधाको दिया राधाने कृष्ण प्रसादी ताम्बूल सबको बाँट कर स्वयं ग्रहण किया ॥२४६॥ कृष्ण उन सबकी कथा सुनने के लिए कपड़ा ओढ़ कर निद्रित के समान चुपचाप रह गये ॥२४७॥ सबने कृष्ण के मुखको नेत्रसे अच्छी तरह देखा, और एक दूसरे के मुँह ताकने लगे, लज्जित होकर कुछ देर वे सब चुप रहीं कुछ नहीं बोलीं ॥२४९॥ सबने कृष्ण के वदन से कपड़ा खींच कर कही, उत्तम सो गए हो, ऐसा कहकर हँसने और हँसाने लगीं ॥२५०॥ इस प्रकार विविध हास्य रस से उन सबके

एवं तौ विविधैर्हासैः रममाणौ गणैः सह।
अनुभूय क्षणं निद्रासुखं च मुनिसत्तम ॥२५१॥
उपविश्यासने दिव्ये सगणौ विस्तृते मुदा।
पणी कृत्य मिथो हार चुम्बाऽऽश्लेष परिच्छदान् ॥२५२॥
अक्षैर्विक्रीडतः प्रेम्णा नर्मालापः पुरः सरम्।
पराजितोऽपि प्रियया जितमित्यवदन्मृषा ॥२५३॥
हारादि ग्रहणे तस्याः प्रवृत्तस्ताऽयते तया।
तथैवं ताड़ितः कृष्णः कर्णोत्पल सरोरुहैः ॥२५४॥
विषण्ण वदनो भूत्वा गतस्व इव नारद।
जितोऽस्मि च त्वया देवि गृह्यतां यत् पणीकृतम् ॥२५५॥
चुम्बनादि मया दत्तमित्युक्त्वा च तथाचरेत्।
कौटिल्यं तद् भ्रुवोद्रष्टुं श्रोतुं तद्भर्त्सनं वचः ॥२५६॥
ततः शारीशुकानाञ्च श्रुत्वा वागाहवं मिथः।
निर्गच्छतस्ततः स्थानाद् गन्तुकामौ गृहं प्रति ॥२५७॥
कृष्णः कान्तामनुज्ञाप्यगवामभिमुखं व्रजेत्।

साथ रमण कर कुछ देर के लिए सबने निद्रा सुख का अनुभव किया ॥२५१॥ सब जाग कर आसनमें वैठ गये और चुम्बन आलिङ्गन हार ग्रहण पण रख कर खेलना शुरु किए ॥२५२॥ प्रेम से आलाप भी करते करते पाशा खेलने लगे। प्रियासे पराजित होकर भी कृष्णने कहा मैंने जीता। झूट ही कहा ॥२५३॥ जोर से हारादि लेने के लिए कृष्ण प्रवृत्त हो गये तो प्रियाने उनको ताड़ना की और न मानने पर कर्णोत्पल के द्वारा प्रहार किया ॥२५४॥ चीज खो जाने पर जैसा वदन विषण्ण होता है वैसा होकर कृष्णने कहा—लो मैं हार गया, जो कुछ पण तुमने किया था वे सब तुम ले लो ॥२५५॥ चुम्बनादि को मैंने दिया है, ऐसा कहकर, उस प्रकार आचरण करने लगे, भ्रूओं के टेढ़ापन देखने के लिए और फट्कार सुनने के लिए वैसा आचरण करने लगे ॥२५६॥ इसके बाद शारी शुक के कलह और बाणी को सुनकर वहाँ से घर जाने के लिए निकल पड़े ॥२५७॥

सा तु सूर्यगृहं गच्छेत् सखीमण्डल संयुता ॥२५८॥
कियद्दूरं ततो गत्वा परावृत्य हरि: पुन: ।
विप्रवेशं समास्थाय याति सूर्यगृहं प्रति ॥२५९॥
सूर्यञ्च पूजयेत्तत्र प्रार्थितस्तत्र सखीजने: ।
तदैव कल्पितैर्वेदै: परिहासयावगर्भितै: ॥२६०॥
ततस्ता अपि तं कान्तं परिज्ञाय विचक्षणा: ।
आनन्दसागरे लीना न विदु: स्वं न चापरम् ॥२६१॥
विहारैर्विविधैरेवं सार्द्धं यामद्वयं मुने ।
नीत्वा गृहं व्रजेयुस्ता: स च कृष्णो गवां व्रजेत् ॥२६२॥
इति सायाह्न सेवा ॥

अथापराह्ण सेवा—

सङ्गम्य तु सखीन् कृष्णो गृहीत्वा गा समन्तत: ।
आगच्छति व्रजं कर्षन्तु तान् मुरलीरवै: ॥२६३॥
ततो नन्दादय: सर्वे श्रुत्वा वेणुरवं हरे: ।
गोधूलिपटलैर्व्याप्तं दृष्ट्वा चापि नभ:स्थलम् ॥२६४॥

कृष्ण कान्ता को कहकर गो के ओर चले गये, राधा सूर्यकुण्डस्थ सूर्यमन्दिर को सखियों के साथ चली गई ॥२५८॥ कुछ ही दूर जाने के बाद वहाँ से कृष्ण लौटकर विप्रवेश धारणकर सूर्य मन्दिर के ओर चले दिये ॥२५९॥ सखियोंने प्रार्थना की, इससे सम्मत होकर कल्पित मन्त्र और परिहाससे पूजन कृष्णने कराया ॥२६०॥ अनन्तर उन सबने जान ही लिया कि यह कृष्ण कान्त है, और आनन्द सागरमें वे सब अपना पराया खोकर ही डूब गईं ॥१६१॥ विविध विहार से दो याम अर्थात् ६ घण्टे बीत गए और वे सब घर को चली गईं, कृष्ण गो सम्भालने के लिए चल दिये ॥१६२॥

इति सायाह्न सेवा ॥

अथापराह्ण सेवा—सखाओं के साथ मिलकर कृष्णने गैया को इकट्ठा किया, व्रजको जानेके लिए बँसूरीको वजाया ॥२६३॥ हरिकी

विसृज्य सर्वकर्माणि स्त्रियो बालादयोऽपि च ।
श्रीकृष्णस्याभिमुखं यान्ति तद्दर्शन समुत्सुकाः ॥२६५॥
राजमार्गे व्रज द्वारि यत्र सर्वे व्रजौकसः ।
कृष्णोऽप्येतान् समागम्य यथावदनुपूर्वशः ॥२६६॥
दर्शनैः स्पर्शनै र्वापि स्मितपूर्वावलोकनैः ।
गोपवृद्धान्नमस्कारैः कायिकैर्वाचिकैरपि ॥२६७॥
साष्टाङ्गपातैः पितरौ रोहिणीमपि नारद ।
सूत्रान्त सूचितेनैव विनयेन प्रियास्तथा ॥२६८॥
एवं तैश्च यथा योग्यं व्रजौकोभिः प्रपूजितः !
गवालयं तथा गाश्च सं प्रवेश्य समन्ततः ॥२६९॥
पितृभ्यामर्थितो याति मात्रा सह निजालयम् ।
स्नात्वा पीत्वा तथा किञ्चिद् भुक्त्वा मात्रानुमोदितः ॥२७०

इत्यपराह्ण सेवा ॥

अथ सायं सेवा—

ताश्च दुग्ध्वा दोहयित्वा पाययित्वा च काश्चन ।

वँसूरीको सुनकर नन्दादि गोपगण गोधूली गगनमें देखकर सब काजको छोड़कर स्त्री बालक आदि व्रजके सभी व्यक्ति कृष्णको देखने के लिए आने के मार्ग को ओर चलने लगे ॥२६४-६५॥ राजमार्गमें व्रज के द्वार में जो जहाँपर थे, इन सब व्रजवासियोंसे कृष्ण क्रमपूर्वक मिलने लगे ॥ दर्शन, स्पर्श, सहास्य अवलोकनसे अपर जनगणको खुस किये गोपवृद्धको प्रणाम से खुस किये, कायिक वाचिक नमस्कार भी किए ॥२६८॥ इस प्रकार व्रजवासियोंने भी यथायोग्य प्रीति प्रदर्शन किया, कृष्णने सब गो को गोष्ठमें प्रवेश कराया ॥२६९॥ पिता माता के आग्रह से मा के साथ कृष्ण घरको गए। स्नान, पान, एवं कुछ भोजन कर गैया दुहने के लिए पुनर्वार गो शाला को गये ॥२६०॥

इत्यपराह्ण लीला ॥

अथ सायं सेवा—गैया दुहवाकर बछड़े को दूध पिलाकर पिता

पित्रा सार्धं गृहं याति ययौ भारिशतानुगः ।।२७१।।
तत्रापि मातृवृन्दैश्च तत् पुत्रैश्च बलैः सह ।
संभुङ्क्ते विविधान्नानि चर्व्यं चुष्यादिकानि च ।।२७२।।
इति सायं सेवा ।।

अथ प्रदोष सेवा —
तन्मातुः प्रार्थनात् पूर्वं राधयापि तदैवहि ।
प्रस्थाप्यन्ते सखी द्वारा पक्कान्नानि तदालयम् ।।२७३।।
श्लाघयंश्च हरिस्तानि भुक्त्वा पित्रादिभिः सह ।
सभागृहं व्रजेत्तैश्च जुष्टं वन्दिजनादिभिः ।।२७४।।
पक्कान्नानि गृहीत्वा या सख्यस्तत्र समागताः ।
बहूनि च पुनस्तानि प्रदत्तानि यशोदया ।।२७५।।
सख्या तत्र तया दत्तं कृष्णोच्छिष्टं तथारहः ।
सर्वं ताभिः समानीय राधिकायै निवेद्यते ।।२७६।।
सापि भुक्त्वा सखीवर्ग युता तदनुपूर्वशः ।
सखिभिर्मण्डिता तिष्ठेदभिसर्त्तुं मुदान्विताः ।।२७७।।

के साथ कृष्ण घरको गए, साथ दूध ढोनेवाले भारिक भी थे ।।२७१।। वहाँपर मातृवृन्द और उन सबके पुत्रवृन्दके साथ बलरामके साथ कृष्ण चर्व्य, चुष्य, लेह्य, पेयादि चार प्रकार के भोजन सेवन किए ।।२७२।।

इति सायं सेवा ।।

अथ प्रदोष सेवा—मा यशोदा कहनेके पहले ही राधाने सखियों के द्वारा विविध प्रकार पक्कान्नादि भेज दिया । पिता प्रभृति के साथ हरिने उन सब मिष्ठान्न भोजन कर और प्रशंसा कर सभागृह को गए जहाँपर अनेक सज्जन तथा स्तव-स्तुति करनेवाले बन्दिजन भी थे ।। २७४।। जो सब सखी पक्कान्न लेकर नन्दालय राधाके यहाँसे आई थी, उन सबको यशोदाने अनेकानेक पक्कान्न देकर विदा की ।।२४५।। सखियोंने यशोदा प्रदत्त और कृष्ण भोजनावशेष को लाकर श्रीराधाको निवेदन कर दिया ।।२७६।। राधाने सखीगण के साथ उक्त भोजन

प्रस्थाप्यतेऽनया काचिदित एव ततः सखी ।
तस्याभिसारिता साऽथ यमुनायाः समीपतः ॥२७८॥
कल्पवृक्ष निकुञ्जेऽस्मिन् दिव्यरत्नमये गृहे ।
सितकृष्ण निशायोग्य वेशायाति सखीयुता ॥२७९॥
कृष्णोऽपि विविधं तत्र दृष्ट्वा कौतूहलं ततः ।
कवित्वानि मनोज्ञानि श्रुत्वा च गीतकान्यपि ॥२८०॥
धन-धान्यादि स्तांश्च प्रीणयित्वा विधानतः ।
जनैराकारितो मात्रा याति शय्यानिकेतनम् ॥२८१॥
मातरि प्रस्थितायान्तु भोजयित्वा ततो गृहान् ।
सङ्केतकं कान्तयात्र समागच्छेदलक्षितः ॥२८२॥
इति प्रदोष सेवा ॥

रात्रि सेवा—

मिलित्वा तावुभावत्र क्रीड़तौ वनराजिषु ।
विहारैर्विविधैर्वेषैः लास्य गीत पुरःसरैः ॥२८३॥

सामग्री को भोजन कर सखियों से मण्डित भूषित होकर आनन्द से अभिसार के लिए तैयारी कर लिया ॥२७७॥ एकक कभी सखीके साथ राधा यमुनातोर पर अभिसार कर पहुँच गई थी ॥२७८॥ शुक्ल-पक्ष कृष्णपक्ष के उचित वेश धारण सखियोंने कराया, और राधा दिव्य रत्नमय गृह कल्पवृक्ष निकुञ्जमें सखीके साथ आ गई ॥२७९॥ कृष्णने भी सभामें विविध कौतुक को देखकर मनोज्ञ कवित्व को सुनकर सङ्गीतसे सन्तुष्ट होकर कलाकारों को विविध पुरस्कार प्रदान किया, और मा बुलाने पर कृष्ण शयन घरमें आ गए ॥२८०-८१॥ मा चले जाने के बाद कृष्ण दरवाजा खोलकर खिड़की से भागकर सङ्केत स्थान को प्रिया से मिलने के लिए चल दिये ॥२८२॥
इति प्रदोष सेवा ॥

रात्रि सेवा—प्रिया पीतम दोनों कुञ्जमें मिल गये, उसके बाद बन बनमें विविध क्रीड़ा विहार करने लगे, विविध वेश नृत्य-गीत का

साधंयाम द्वयं नीत्वा रात्रेरेवं विहारतः ।
सुषुप्सु विशेत् कुञ्जं पश्यषामिरलक्षितैः ॥२८४॥
निर्वृन्त कुसुमैः क्लप्ते केलि तल्पे मनोरमे ।
सुप्तावतिष्ठां तत्र सेव्यमानौ प्रियालिभिः ॥२८५॥
इति रात्रिसेवा ॥

श्रीनारद उवाच—

श्रोतुमिच्छामि भो देव, व्रजराज सुतस्य च ।
वृन्दावने रसं दिव्यं राधयैकान्तिकं सह ॥२८६॥

श्रीसदाशिव उवाच—

शृणु नारद वक्ष्यामि राधाकृष्ण रसं शुचिम् ।
सुगोप्यं परमोदारं न वक्तव्य हि कस्यचित् ॥२८७॥
ऐकान्तिक रसास्वादं कर्तु वृन्दावने भूमौ ।
व्रजराजकुमार ऊचे बहुकाल ममावयम् ॥२८८॥
मयि प्रसन्नः श्रीकृष्णो मन्त्र युग्ममनुत्तम ।
युगल ख्यं ददौ मह्य स्वीयोज्ज्वल रसाप्लुतम् ॥२८९॥

का प्राधान्य इसमें विशेष रूपसे था ॥२८३॥ सार्ध यामद्वय ७॥ साड़े सात घन्टे इस प्रकार से व्यतीत करने के बाद सोने के लिए दूसरेको न कहकर चुपके से कुञ्जमें राधा कृष्ण घुस गये ॥२८३-८४॥ और वृन्तहीन पुष्पके शय्यामें सुखपूर्वक निद्रित हो गये, प्रियसखीगण सेवामें तत्पर रहे ॥२८५॥ इति रात्रि सेवा ॥

नारदजी बोले मैं गोपाल देव व्रजराजनन्दन का वृन्दावनमें राधाके साथ ऐकान्तिक दिव्य रसको सुनना चाहता हूँ । श्रीसदाशिव जी बोले—सुनो नारद, राधा कृष्णके शुचि रसको कहता हूँ, यह रस सुगोप्य परमोदार है, किसीको भी कभी न कहना ॥२८७॥ मुनि ! वृन्दावनमें ऐकान्तिक रसास्वादन करनेके लिए बहुकाल तक व्रजराज कुमार की आराधना मैंने की ॥२८८॥ मेरे प्रति प्रसन्न होकर कृष्णने अनुतम युगलमन्त्र मुझको प्रदान किया, जो स्वीय मन्त्र और उज्ज्वल रसाप्लुत है ॥२८९॥ उस समय कृष्णने निज शिष्य मुझको निजरसको

समब्रवीत्तदा कृष्णः स्व शिष्यं मां स्वकं रसम् ।
ब्रवीमि त्वां शृणुष्वाद्य ब्रह्मादीनामगोचरम् ॥२९०॥
व्रजराज सुतो वृन्दावने पूर्णतमो वसन् ।
सम्पूर्ण षोड़शकलो विहारं कुरुते सदा ॥२९१॥
वासुदेवः पूर्णतरो मथुरायां वसन् पुरि ।
कलाभिः पञ्चदशभि र्युतः क्रीड़ति सर्वदा ॥२९२॥
द्वारकाधिपतिर्द्वारावत्यां पूर्णस्त्वसौ वसन् ।
चतुर्दशकलायुक्तो विहरत्येव सर्वदा ॥२९३॥
एकया कलया द्वाभ्यां मथुरा द्वारकाधिपौ ।
वृन्दावनपते रूपौ पूर्णौ स्वे स्वे पदे रसे ॥२९४॥
मथुरानाथो वृन्दावनाधिपापेक्षया स्वरूपेण लीलया च
एकया कलया ऊनः । मथुरालीलायां मथुरायाञ्च
सम्पूर्ण षोड़शकलः । तथा द्वारकानाथौ वृन्दावनाधिपा
पेक्षया स्वरूपेण लीलया च द्वाभ्यां कलाभ्यामूनः ।
द्वारकायां द्वारकालीलायाञ्च पूर्णषोड़शकलः ॥

कहा, सुनो नारद ! आज तुम्हें ब्रह्मादिका अगोचर रसको बोलूंगा ॥ २९०॥ पूर्णतम सम्पूर्ण षोड़श कल ब्रजराज सुत वृन्दावनमें रहकर सदा विहार करते हैं ॥२९१॥ वासुदेव पूर्णतर रूप हैं, मथुरा पुरमें रहते हैं। पञ्चदश शक्ति के साथ निरन्तर क्रीड़ा करते हैं ॥२९२॥ द्वारकाधिपति द्वारकामें पूर्णस्वरूप में रहते हैं, और चतुर्दश कलायुक्त होकर विहार करते हैं ॥२९३॥ एक कला और कलाद्वय से मथुरा द्वारकाधिप होते हैं, वृन्दावन पति का रूप और उन सबका रूप भी अपने अपने स्थानमें पूर्ण है ॥२९४॥ वृन्दावनाधिप की अपेक्षा से मथुरा नाथ स्वरूप और लीला से एककला न्यून है, मथुरा लीला में और मथुरा में सम्पूर्ण षोड़शकला के होते हैं, उस प्रकार द्वारिका नाथ वृन्दावनाधिप की अपेक्षा से स्वरूप और लीला से दो कला से न्यून है, द्वारका में और द्वारका लीलामेंपूर्ण षोड़श कला के होते हैं। श्री भु लीला योगमाया चिन्त्या अचिन्त्या मोहिनी कौशली

श्रीभूलीला योगमाया चिन्त्याचिन्त्या तथैव च ।
मोहिनी कौशलीत्यष्टौवहिरङ्गाश्च शक्तयः ॥२९५॥
लीला प्रेमस्वरूपा च स्थापन्याकर्षिणी तथा ।
संयोगिनी वियोगिन्याह्लादनीत्यन्तरङ्गिका ॥२९६॥
व्रजे श्रीकृष्णचन्द्रस्य सन्ति षोड़श शक्तयः ।
पोषिकामधुरस्यैव तस्यैता वै सनातना: ॥२९७॥
ह्लादिनी या महाशक्तिः सर्वशक्ति वरीयसी ।
तत् सारभावरूपा श्रीराधिका परिकीर्त्तिता ॥२९८॥
तया श्रीकृष्णचन्द्रस्य क्रीड़ा या: समये मुने ।
तदाविष्ट वासुदेवं सहक्षीराब्धि नायकम् ॥२९९॥
अन्तरीक्ष गतं कुर्याच्छक्तिराकर्षिणी हरेः ।
क्रीड़ान्ते स्थापयेत्तन्तु स्थापनी कृष्णदेहतः ॥३००॥
सम्पूर्ण षोड़शकलः केवलो नन्दनन्दनः ।
विक्रीड़न् राधया सार्धं लभते परमं सुखम् ॥३०१॥

श्रीनारद उवाच—

गते मधुपुरीं कृष्णे विप्रलम्भरसः कथम् ।

यह आठ शक्ति हैं, और वहिरङ्गाशक्ति भी होती है ॥२९५॥ लीला प्रेमस्वरूपा, स्थापनी, आकर्षणी, संयोगिनी, वियोगिनी आह्लादिनी कों अन्तरङ्गा कही जाती है ॥२९६॥ व्रजमें श्रीकृष्णचन्द्र की षोड़श शक्ति होती है ये सब सनातनी शक्ति है, और मधुर की पोषण करती है ॥२९७॥ समस्त शक्ति की वरीयसी शक्ति है, उसका सार भावरूपा श्रीराधिका है ॥२९८॥ उस राधाके साथ जब कृष्णचन्द्र क्रीड़ा करते हैं, क्षीराब्धि नायक के साथ आविष्ट वासुदेवको अन्तरीक्षगत होने पर भी हरिकी आकर्षणी शक्ति आकर्षण करती है, क्रीड़ा के बाद कृष्ण देह से पृथक् स्थापन करने वाली शक्ति की स्थापनी कही जाती है ॥२९९-३००॥ श्रीनन्दनन्दन ही केवल षोड़श कला के होते हैं, जो राधा के साथ क्रीड़ा कर परम सुख को प्राप्त करते हैं ॥३०१॥ नारदजी बोले—कृष्ण मधुपुरी चले जाने पर

वासुदेवे राधिकायाः संशयं छिन्धि मे प्रभो ॥

श्रीसदाशिव उवाच—

शक्ति संयोगिनी कामा वामाशक्ति वियोगिनी ।
ह्लादिनी कीर्त्तिदा पुत्री चैवं राधात्रयं व्रजे ॥३०३॥
मम प्राणेश्वरः कृष्णस्त्यक्त्वा वृन्दावनं क्वचित् ।
कदाचिन्नैव यातीति जानीते कीर्त्तिदा सुता ॥३०४॥
कामावामे न जानीत इति च ब्रह्मनन्दनः ।
रासारम्भ इवान्तर्धि गतवान्नन्दनन्दनः ॥३०५॥
मथुरां मथुरानाथो वासुदेवो जगाम ह ।
अन्तर्हिते नन्दसुते श्रीमद्वृन्दावने मुने ॥३०६॥
प्रवासाख्यं रसं लेभे राधावै कीर्त्तिदासुता ।
ततो वदन्ति मुनयः प्रवासं सङ्ग विच्युतिम् ॥३०७॥
मम जीवन नेता च त्यक्त्वा मां मथुरां गतः ।
इति विह्वलिता वामा राधाया विरहादभूत् ॥३०८॥
यमुनायां निमग्ना सा प्रकाशं गोकुलस्य च ।

विप्रलम्भ रस कैसे हुआ, वह तो वासुदेव रहा, हे प्रभो ! मेरा संशय को आप काटो ॥३०२॥ सदाशिवजी बोले—तीन शक्ति होती हैं, कामा, वामा, ह्लादिनी, संयोगिनी शक्ति का नाम कामा, वियोगिनी शक्ति का नाम वामा, आनन्दित करने वाली शक्तिको ह्लादिनी कही जाती है, कीर्त्तिदापुत्री राधा ह्लादिनी होने पर भी व्रजमें राधा शक्ति त्रय युक्ता है ॥३०३॥ कीर्त्तिदापुत्री जानती ही, मेरा प्राणेश्वर कृष्ण कभी भी वृन्दाबनको छोड़कर नहीं जाते हैं ॥३०४॥ ब्रह्मनन्दन ! ऐसा कामा और वामा नहीं जानती है, रास के आरम्भमें ही नन्दनन्दन अन्तर्धान हो गये थे ॥३०५॥ मथुरानाथ वासुदेव मथुरा चले गये, मुनिवर ! जब श्रीमद्वृन्दावन में नन्दसुत अन्तर्धान हो गये ॥३०६॥ कीर्त्तिदा पुत्री राधा प्रवासाख्य रसास्वादन करने लगी, सङ्ग विच्युति को मुनिगण प्रवास कहते हैं ॥३०७॥ मेरा जीवन मुझको छोड़कर मथुरा चले गये, इस प्रकार विह्वल होकर वामा राधा रही ॥३०८॥

गोलोकं प्राप्य तत्रामृत संयोग रस पेशला ॥३०९॥
कामा राधा च मथुरा विरहेण निपीड़िता।
कुरुक्षेत्रं गता तीर्थयात्रा परमलालसा ॥३१०॥
नन्दनन्दन भावज्ञ उद्धवो व्रजमागतः।
सान्त्वयिष्यन् कीर्त्तिदायाः सुतां मासद्वये गते ॥३११॥
राधामास्वादयामास श्रीमद्भागवतार्थकम्।
कथायां भागवत्यान्तु जातायां मुनिपुङ्गव।
व्रजेन्द्रनन्दनः श्रीमांस्तदा प्रत्यक्षतां गतः ॥३१२॥

अतएव पाद्मोत्तरखण्डोक्तं द्वारकाधिपतेर्वृन्दावन प्रति गमनं क्षीराब्धिशय्याविष्टत्वात् क्षीराब्धिशायिनो द्रोण-दीनां लब्धवरत्वात्, तेषां पुनः स्वस्थान प्रापणार्थमेवेत्येव गन्तव्यम्। श्रीमद्भागवत वाक्यानामेवं विचार ऽवगन्तव्यः। पाद्मोत्तरखण्डे तु कालिन्दीपुलिने रमये' इत्यत्र श्रीद्वारकानाथस्य श्रीनन्दनन्दन मधुरलीला सन्दर्शने सोत्कण्ठत्वाद् व्योमयानेरेत्य श्रीवृन्दावने मासद्वयमुवासेत्यभिप्रायो ज्ञेयः।

राधा गोकुल की यमुना में डूब गयी और गोलोक पँहुच गयी, वहाँ जाकर मधुर संयोग रस का आस्वादन किया ॥३०९॥ कामा राधा मथुरा विरह से दुःखी हो गई, और तीर्थयात्रा की लालसासे कुरुक्षेत्र पहुँच गयी ॥३१०॥ नन्दनन्दन के भावको जानने वाले उद्धव व्रजमें आए और कीर्त्तिदा पुत्री को सान्त्वना देनेके लिए दो मास बिताए ॥ ३११॥ श्रीमद्भागवत की कथा का आस्वादन उनको उद्धवने कराया, हे मुनिपुङ्गव! उस समय ही व्रजेन्द्रनन्दन श्रीमान् वहाँपर प्रत्यक्ष हो गए ॥३१२॥ अतएव पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में वर्णित श्रीद्वारकाधिपति का आगमन भी सुशोभन होता है, द्वारकाधीश क्षीराब्धिशायि आविष्ट होने से ही वैसा हुआ, क्षीराब्धिशायीने ही द्रोण-धरा को वर प्रदान किया था, उन सबको पुनर्वार निजस्थान प्राप्त कराने के लिए आप आए थे। श्रीमद्भागवतस्थ वाक्य को

इति ते सर्वमाख्यातं नैत्यिकं चरितं हरेः ।
पापिनोऽपि विमुच्यते स्मरणाद् यस्य नारद ॥३१३॥

श्रीनारद उवाच—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया देवि न संशयः ।
हरेर्मे नत्यिकी लीला यतो मेऽद्य प्रकाशिता ॥३१४॥

श्रीसनत्कुमार उवाच—

इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य तया चापि प्रपूजितः ।
अन्तर्धानं गतो राजन् नारदो मुनि सत्तमः ॥३१५॥
मयाप्येतदानुपूर्वं सर्वं तत् परिकीर्त्तितम् ।
जपन्नित्यं प्रयत्नेन मन्त्रयुग्ममनुत्तमम् ॥३१६॥
कृष्णवक्त्रादिदं लब्धं पुरा रुद्रेण यत्नतः ।
तेनोक्तं नारदायाथ नारदेन मयोदितम् ॥३१७॥
संसाराग्निविनाशाय मयाप्येतत् तवोदितम् ।
त्वया चेतद् गोपनीय रहस्यं परमाद्भुतम् ॥३१८॥

इस प्रकार समझना होगा । पाद्मोत्तर खण्डमें वर्णित है— 'कालिन्दी पुलिने रम्ये' यहाँपर द्वारकानाथ को श्रीनन्दनन्दन की मधुर लीला देखने की उत्कण्ठा हुई, इसलिए विमान से आकर श्रीवृन्दावन में दो मास निवास किए । हे नारद ! इस प्रकार नैत्यिक सब कुछ श्रीहरि चरित को मैंने कहा, जिसका स्मरण से पापी भी मुक्त हो जाता है ॥३१३॥ श्रीनारदजीने कहा— मैं धन्य हूँ, आपसे अनुगृहीत हूँ, हे देवि ! इसमें कोई संशय नहीं है, श्रीहरि की नैत्यिकी लीला को आपने मेरे पास प्रकाश किया ॥३१४॥ श्रीसनत्कुमारने कहा—इस प्रकार कहकर और उनकी परिक्रमा लगाकर, पूजा कर मुनिसत्तम नारद अन्तर्धान हो गये ॥३१५॥ मैंने भी आनुपूर्वी सब कहा, नित्य मन्त्रयुगल का जप करता हूँ ॥३१६॥ पहले रुद्रने श्रीकृष्ण के निकट यह प्राप्त किया, उन्होंने नारद को कहा, नारदने मुझको कहा, तुम भी महा गोपनीय वस्तुकी यत्नसे रक्षा करना ॥३१८॥ श्रीअम्बरीषने

अम्बरीष उवाच—

कृतकृत्योऽभवं साक्षात् त्वत् प्रसादादहं गुरो ।
रहस्याति रहस्यं यत् त्वया मह्यं प्रकाशितम् ।।३१९।।

श्रीसनत्कुमार उवाच—

धर्मानेतानुपादिष्टो जपन्मन्त्र महर्निशम् ।
अचिरादेव तद्दास्यमवास्यसि न संशयः ।।३२०।।
मयापि गम्यते राजन् गुरोरायतनं मम ।
वृन्दावने यत्र नित्यं गुरुर्मेऽस्ति सदाशिवः ।।३२१।।

इति श्रीसनत्कुमाराम्बरीष संवादे श्रीकृष्णयुगलमन्त्र
प्रकाशकः षट्त्रिंशत् पटलः ।।

एतान् धर्मान् अष्टकाल सेवारूपान् मन्त्रं युगलमन्त्रम्,
तद्दास्यं तयोः श्रीराधाकृष्णयोर्दास्यं दासीभावम् इति ।

कहा – हे गुरुदेव ! आपकी प्रसन्नता से मैं पूर्ण हो गया हूँ, आपने रहस्यातिरहस्य को भी कहा ।।३१९।। श्रीसनत्कुमारने कहा— इस उपदिष्ट धर्म का जप अहर्निश करने से सत्वर श्रीकृष्ण दास्य लाभ होता है, इसमें संशय नहीं है ।।३२०।। श्रीगुरुदेव के आश्रम देखने के लिए मैं भी जा रहा हूँ। जिस वृन्दावन में मेरा श्रीगुरुदेव सदाशिव विराजित हैं ।।

इति श्रीसनत्कुमाराम्बरीषसंवादे श्रीकृष्णयुगलमन्त्र
प्रकाशकः षट्त्रिंशत पटलः ।।

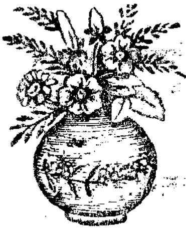
एतान् धर्मान् अष्टकालसेवारूपान् मन्त्रं युगलमन्त्रम्,
तद्दास्यं तयोः श्रीराधाकृष्णयोर्दास्यं सखीभावमिति ।

राधाविपिनवास्तव्य हरिदासेन शास्त्रिणा ।
मनीषिणां प्रमोदाय भाषाव्याख्या कृतामुदा ।।







दीपावली एवम नूतन वर्ष
अ भि नं द न







SATHE







